जम्मू-काश्मीर

एक अवलोकन

शारदापीठ

आशुतोष भटनागर

जम्मू-काश्मीर

एक अवलोकन

आशुतोष भटनागर

जम्मू-काश्मीर अध्ययन केन्द्र

जम्मू–काश्मीर : एक अवलोकन

प्रथम संस्करण : अगस्त 2014

मूल्य : 20 रुपये

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मुद्रण : प्रगति क्रिऐशन्स् दिल्ली–95

प्रकाशक
जम्मू–काश्मीर अध्ययन केन्द्र
प्रवासी भवन, 50, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नयी दिल्ली
दूरभाष न. 011–23213039
ई-मेल : info@jkstudycentre.org
वेबसाइट : www.jkstudycentre.org

अनुक्रम

पृष्ठ संख्या

1. प्रस्तावना..06

2. जम्मू – काश्मीर : ऐतिहासिक संदर्भ......................08

3. सिख और डोगरा राज्य..19

4. अंतिम महाराजा..22

5. जम्मू–काश्मीर का भारत में विलय.........................29

6. भारत संयुक्त राष्ट्र संघ में 32

7. प्रजापरिषद और उसका आंदोलन...........................36

8. आंदोलन बढ़ता गया..38

9. डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी का बलिदान 41

10. अस्थायी अनुच्छेद – 370 45

11. अंतरराष्ट्रीय हस्तक्षेप...50

12. पाकिस्तान का अपूर्ण लक्ष्य.....................................52

13. उपसंहार...54

14. जम्मू और काश्मीर राज्य के सम्बन्ध में 22 फरवरी 1994 को संसद मेंस्वीकृत सर्वसम्मत संकल्प................................60

प्रस्तावना

भारत के उत्तर में हिमालय की गोद में बसा जम्मू–काश्मीर राज्य भारत की स्वतंत्रता के बाद से ही समस्याओं के भंवर में फंसा हुआ है। इनमें से अधिकांश स्वाभाविक कम हैं और कृत्रिम अधिक। ब्रिटिश–अमेरिकी कूटनीति ने इसे जन्म दिया तो स्वतंत्र भारत की सरकारों ने इन्हें बढ़ाया। राष्ट्रीय दृष्टि के अभाव, राजनैतिक कवच के भीतर निजी स्वार्थों के पोषण, क्षेत्र के सामरिक और रणनीतिक महत्व की अज्ञानता ने मुद्दे की जटिलता में वृद्धि की।

अदूरदर्शी निर्णयों के दुष्परिणाम को ढ़कने के लिये जम्मू–काश्मीर को ऐसा विषय बनाने की चेष्टा हुई जिस पर बात करना ही निषिद्ध था। फलस्वरूप, जिस प्रकार हम देश के प्रत्येक भाग से परिचित होते हैं, जम्मू–काश्मीर का वैसा परिचय तक देश के नागरिक नहीं पा सके। परिणाम यह हुआ कि पूरे देश के साथ जम्मू–काश्मीर का जो सहज संबंध बनना चाहिये था, जो संवाद स्थापित होना चाहिये था, वह नहीं हो सका। स्वतंत्रता के छः दशक बाद आज जब देश इसके समाधान की ओर बढ़ रहा है तो देश को जम्मू–काश्मीर के मौलिक तथ्यों का परिचय देना आवश्यक हो गया है।

जम्मू–काश्मीर राज्य की बात करते समय प्रायः सभी के सामने काश्मीर घाटी का ही मानचित्र रहता है। जबकि तथ्य यह है कि काश्मीर घाटी का क्षेत्रफल संपूर्ण जम्मू–काश्मीर राज्य का मात्र 7.13 प्रतिशत है। यदि पाक अधिक्रांत क्षेत्र को छोड़ दें तो भी यह भारत के अधिकार वाले राज्य का 16 प्रतिशत भी नहीं है।

दूसरी बड़ी भ्रांति है कि जम्मू–काश्मीर एक मुस्लिम राज्य है। इस भ्रांति के चलते ही शेष देश के सेकुलर तबके को राज्य में निजामे मुस्तफा की मांग में कोई खोट नजर नहीं आता। वस्तुतः ऐसा नहीं है। यह मुस्लिम बहुल राज्य अवश्य है लेकिन भारतीय अधिकार वाले भूभाग में जहां 1 करोड़ 20 लाख आबादी में लगभग 70 लाख मुस्लिम जनसंख्या है वहीं 50 लाख के करीब गैर मुस्लिम मतावलम्बी। देश में अनेक स्थान ऐसे हैं जिनमें मुस्लिम जनसंख्या का अनुपात यह या इससे अधिक है।

जम्मू–काश्मीर राज्य की बात करें तो जहां काश्मीर, गिलगित और बाल्तिस्तान

मुस्लिम बहुल हैं वहीं जम्मू हिन्दू बहुल है और लद्दाख बौद्ध बहुल। भौगोलिक संरचना, भाषा और जीवनशैली के स्तर पर भी सभी क्षेत्रों में परस्पर काफी भिन्नता है। इसके उपरान्त भी इनमें परस्पर और शेष देश के साथ एक अटूट बंधन है जो सैकड़ों हजारों वर्षों से भारतीय उपमहाद्वीप को एकता के सूत्र में बाँधे है।

ऐतिहासिक काल से ही यह खाड़ी के देशों, अफ्रीका, मध्य एशिया तथा यूरोप के साथ भारत के व्यापार का मुख्य मार्ग रहा है। कराकोरम मार्ग पर हजारों की संख्या में उत्कीर्ण भित्तिचित्र एवं शिलालेख आज भी इसके प्रमाण हैं। इन रास्तों से भारत का व्यापारिक माल ही नहीं भारत का दर्शन भी सारी दुनियां में पहुंचा है। भारतीय संस्कृति के आर्षसूत्र हिमालय के इस प्रांगण में जन्मे, यहीं पुष्पित–पल्लवित हुए।

यह विडंबना ही है कि जिस भूमि से भारत की सांस्कृतिक यात्रा प्रारंभ हुई, जहां उसके शाश्वत मूल्यों की खोज हुई, जहां हिन्दू जीवन शैली का आविर्भाव हुआ, भारत के नागरिक आज उसके दर्शन से भी वंचित हैं। इससे भी बड़ी विडंबना है कि वह भूमि जिनके अधिकार में है, भारतीय जीवन मूल्यों में उनकी तनिक भी आस्था नहीं है और भारतीय संस्कृति के प्रतीकों को वे अकारण ही नष्ट करने पर तुले हुए हैं। विडंबना यह भी है कि गत छः दशकों में भारत की चुनी हुई सरकारों ने भारतीय प्रतीकों की रक्षा और भारतीय भूमि को वापस लेने के लिये जरा भी प्रयत्न नहीं किये।

जम्मू–काश्मीर अध्ययन केन्द्र ने जम्मू–काश्मीर के मुद्दे को दो देशों के सीमा–विवाद अथवा देश के एक हिस्से की आजादी की मांग, जैसा कि सामान्य रूप से इसे स्थापित करने का प्रयास किया जाता रहा है, की परिधि से बाहर लाकर इसे भारतीय संस्कृति, संप्रभुता और स्वाभिमान के प्रतीक के रूप में निरूपित करने का प्रयास प्रारंभ किया है। राजनैतिक बहस से अलग, राष्ट्रीय आकांक्षा की अभिव्यक्ति का माध्यम माना है।

आवश्यक है कि सहज–सरल भाषा में जम्मू–काश्मीर के मुद्दे को जन–जन तक पहुंचाया जा सके तभी नागरिकों के मन में उस क्षेत्र के प्रति अपनत्व का भाव आयेगा और वहां की स्थिति से देश अपने आपको संबद्ध अनुभव करेगा। प्रस्तुत पुस्तक इसी का एक लघु प्रयास है।

आशुतोष भटनागर
नयी दिल्ली

जम्मू - काश्मीर : ऐतिहासिक संदर्भ

जम्मू

यह राज्य का एक प्रशासनिक मण्डल है जिसका मुख्यालय जम्मू नगर है। इसका क्षेत्रफल कुल 36,315 वर्ग कि.मी. है जिसमें से आज हमारे पास लगभग 26 हजार वर्ग कि.मी. है। दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों से युक्त पीर पंजाल पर्वत के दक्षिण में इस क्षेत्र में तवी और चेनाब जैसी बारहमासी नदियां बहती हैं। यहां की वर्तमान जनसंख्या का लगभग 70 प्रतिशत हिन्दू है। मुख्य भाषा डोगरी व पहाड़ी है।

जम्मू मण्डल का सबसे बड़ा नगर है। यह राज्य की शीतकालीन राजधानी भी है। जम्मू को मंदिरों का शहर भी कहा जाता है। नगर में अनेकों मंदिर एवं तीर्थ स्थल हैं।

जम्मू धार्मिक पर्यटन का केन्द्र है। जम्मू नगर से आगे बढ़ते ही त्रिकूट पर्वत की श्रृंखला शुरू हो जाती है। त्रिकूट पर्वत पर ही 1700 मीटर की ऊंचाई पर माँ वैष्णो देवी की पवित्र गुफा है जहां महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती के आवास की मान्यता है। शिवखोड़ी, बूढ़ा अमरनाथ, सुद्ध महादेव, गुरुद्वारा नगली सहब, शाहदराशरीफ जैसी सिख व इस्लामिक मत से जुड़ी अनेक सांस्कृतिक धरोहरें भी यहाँ मौजूद हैं।

जम्मू मण्डल का अधिकांश भाग हिमालय की शिवालिक श्रृंखला पर बसा है। त्रिकूट पर्वत तथा तवी नदी की घाटी जम्मू को सुन्दर और आकर्षक बनाते हैं। पीर पंजाल की पहाड़ियां इसे काश्मीर घाटी से अलग करती हैं।

यह जनश्रुति है कि जम्मू को ईसा से 14वीं सदी पूर्व राजा जम्बुलोचन ने बसाया था। उसके भाई राजा बाहुलोचन ने तवी नदी के तट पर एक दुर्ग का निर्माण किया जो आज भी मौजूद है। महाभारत में भी इस स्थान का उल्लेख प्राप्त होता है। जम्मू नगर से 32 किमी उत्तर स्थित अखनूर में खुदाई के दौरान प्राप्त पुरावशेष से सिद्ध होता है कि यह क्षेत्र हड़प्पा सभ्यता का भाग रहा है।

मौर्य, कुषाण और गुप्त काल के अवशेष भी जम्मू मण्डल में प्राप्त होते हैं। तैमूर के आक्रमण के संदर्भ में भी जम्मू का उल्लेख मिलता है।

विस्थापितों की भूमि–जम्मू

गत 63 वर्षों से जम्मू विस्थापन की मार झेल रहा है। आज जम्मू क्षेत्र में लगभग 60 लाख जनसंख्या है जिसमें 42 लाख हिन्दू हैं। इनमें लगभग 15 लाख विस्थापित हैं जो समान अधिकार एवं समान अवसर का आश्वासन देने वाले भारत के संविधान के लागू होने के 60 वर्ष पश्चात भी नागरिक अधिकारों से वंचित हैं। शरणार्थियों और विस्थापितों की इतनी बड़ी संख्या ने जम्मू को विस्थापितों की भूमि बना दिया है। इनकी प्रमुख श्रेणियां हैं –

पाकिस्तान अधिकृत जम्मू–काश्मीर के विस्थापित

1947 में लगभग 50 हजार परिवार पाकिस्तान अधिक्रांत जम्मू–काश्मीर से विस्थापित होकर भारतीय क्षेत्र में स्थित जम्मू–काश्मीर में आये। आज उनकी जनसंख्या लगभग 12 लाख है जो पूरे देश में बिखरे हुए हैं। जम्मू क्षेत्र में इनकी संख्या लगभग 8 लाख है। सरकार ने इस तर्क के साथ इनका स्थायी पुनर्वास नहीं किया कि पाक अधिक्रांत जम्मू–काश्मीर हमारे नक्शे में है, हमारा दावा कमजोर हो जायेगा, अगर हम उनको उनका पूरा मुआवजा दे देंगे। आज छः दशक बाद भी उनके 56 कैंप हैं जो दूर–दराज के गांवों तक फैले हैं और जिनमें आज भी वे अपने स्थायी पुनर्वास का इंतजार कर रहे हैं। जो मकान, जमीन उनको दी गई, उसका भी मालिकाना हक उनका नहीं है।

1947 में छूट गई संपत्तियों एवं विस्थापित आबादी का ठीक से पंजीकरण ही नहीं हुआ फिर मुआवजा तो बहुत दूर की बात है। विभाजन के बाद पाक अधिगृहीत कश्मीर से विस्थापित हुए हिन्दू, जो बाद में देश भर में फैल गये, उनके जम्मू–काश्मीर में स्थायी निवासी प्रमाण पत्र ही नहीं बनते।

विधानसभा में पाक अधिकृत जम्मू–काश्मीर के 24 क्षेत्र खाली रहते हैं। विधानसभा और विधान परिषद में विस्थापित होकर आये उस क्षेत्र के मूल निवासियों को आनुपातिक प्रतिनिधित्व दिये जाने का प्रस्ताव अनेक बार आया है किन्तु इस पर सरकार खामोश है। इनके बच्चों के लिये छात्रवृत्ति, शिक्षा–नौकरी में आरक्षण आदि की व्यवस्था नहीं है।

पश्चिमी पाक के शरणार्थी– भारत विभाजन के पश्चात पश्चिमी पाकिस्तान से विस्थापित होकर भारत आने वाले लोगों में से कुछ लोग जम्मू–काश्मीर राज्य के सीमावर्ती इलाकों में आ कर बस गये। आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार तब ऐसे परिवारों की संख्या 5764 थी । इनमें से अधिकतर लोग वर्तमान पाकिस्तान के स्यालकोट जिले के निवासी थे तथा प्रायः अनुसूचित जाति के थे। इनकी आबादी

अब लगभग ढ़ाई लाख है।

छः दशक से अधिक बीतने के बाद भी वे जम्मू–काश्मीर के स्थायी निवासी नहीं हैं। जम्मू–काश्मीर राज्य के संविधान के अनुसार वे लोग वहां के स्थायी निवासी बन सकने हेतु पात्र नहीं हैं। परिणामस्वरूप नागरिकता के सभी मूल अधिकारों – मतदान, उच्च शिक्षा एवं व्यावसायिक शिक्षा में बच्चों को दाखिला, सरकारी नौकरी, संपत्ति खरीदने का अधिकार, छात्रवृति आदि से वे वंचित हैं।

छम्ब विस्थापित– 1947 तथा 1965 में युद्ध के समय इस क्षेत्र के लोग विस्थापित हुए। 1971 में इस क्षेत्र को शिमला समझौते में पाकिस्तान को देने के पश्चात स्थायी तौर पर विस्थापितों की यह संख्या भी लगभग एक लाख है। इनका पुनर्वास तो भारत सरकार की जिम्मेदारी थी, क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय समझौते में हमने छम्ब की 18 हजार एक भूमि पाकिस्तान को दे दी। भारत सरकार ने वादे के अनुसार न तो पूरी भूमि और न ही उसके बदले कीमत दी, घर–पशु आदि के लिये भी एक परिवार को केवल 8,500 रूपये दिये।

अभी तक इन परिवारों का पुनर्वास का काम पूरा नहीं हुआ है किन्तु 1996 में इस कार्य के लिये गठित छम्ब विस्थापित जन पुनर्वास अधिकरण (डीपीआरए) केन्द्र सरकार ने बंद कर दिया और इन सबको असहाय अवस्था में छोड़ दिया।

काश्मीरी हिन्दू– 1989–1991 में आये कश्मीर के हिन्दू यह अनुभव करते हैं कि हम देश, समाज, सरकार, राजनैतिक दल – सभी के ऐजेंडा से आज बाहर हो गये हैं। 52 हजार पंजीकृत परिवारों की अनुमानित आबादी 4 लाख है। एक के बाद एक आश्वासन, पैकेज – पर धरती पर वही ढाक के तीन पात।

20 वर्ष पश्चात् भी धार्मिक– सामाजिक संपत्तियों के संरक्षण का बिल विधानसभा में पारित नहीं हुआ, राजनैतिक तौर पर विधानसभा में कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। 1991 में 1 लाख से अधिक पंजीकृत मतदाता थे जो आज कम होकर 70 हजार रह गये हैं। विस्थापन के पश्चात उनके वोट बनाने और डालने की कोई उचित व्यवस्था न होने के कारण समाज की रूचि कम होती जा रही है। आज भी समाज की एक ही इच्छा है कि घाटी में पुनः सुरक्षित, स्थायी, सम्मानपूर्वक रहने की व्यवस्था के साथ सभी की एक साथ वापसी हो।

जम्मू के आतंक पीड़ित क्षेत्रों के विस्थापित– काश्मीर घाटी के पश्चात जम्मू के डोडा, किश्तवाड़, रामबन, उधमपुर, रियासी, पुंछ, राजौरी, कठुआ जिलों के उन क्षेत्रों में जहां मुस्लिम जनसंख्या अधिक थी, आतंकवाद आया, पर सरकार ने आज तक इन क्षेत्रों से आंतरिक विस्थापित लोगों की न तो गिनती ही की और न

ही उनके लिये उचित व्यवस्था की। यह संख्या भी लगभग एक लाख है। आतंकवाद से प्रभावित लोगों की कुल संख्या तो लगभग 8 लाख है।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पश्चात भी सरकार इनकी उपेक्षा कर रही है। जबकि ये वे लोग हैं जिन्होंने आतंकवाद से लड़ते हुये बलिदान दिये, स्थायी रूप से विकलांग हो गये। गांव–घर–खेत छोड़े पर भारत माता की जय बोलना न छोड़ा। इनमें एक बड़ा वर्ग स्थानीय देशभक्त गुज्जर, बक्करवाल, पहाड़ी मुसलमान का भी है। सरकार ने इनके लिये कोई स्थायी योजना नहीं बनायी। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय, कि जम्मू क्षेत्र के आतंक प्रभावित क्षेत्रों के विस्थापितों को काश्मीर के समान ही दर्जा देकर सभी सुविधाएं प्रदान की जायें, का भी क्रियान्वयन राज्य सरकार नहीं किया।

लगभग 10 हजार वर्ग कि.मी. जम्मू क्षेत्र पाकिस्तान के अनधिकृत कब्जे में है। प्रमुख रूप से यहां पंजाबी एवं पहाड़ीभाषी जनसंख्या है। आज यह क्षेत्र पूर्णतया मुस्लिम हो चुका है परन्तु 1947 में पाकिस्तानी सैनिकों और कबाइलियों के हमले में अधिकांश हिन्दू और सिख मारे गये। यहां से उस समय विस्थापित हुए हजारों लोग जो अपनी प्राणरक्षा में सफल हुए, आज शरणार्थी बनकर जम्मू–काश्मीर एवं भारत के अन्य भागों में रहते हैं।

पाकिस्तान के कब्जे में प्रमुख रूप से मीरपुर, मुजफ्फराबाद, कोटली, भिम्बर तथा देवा–बटाला का क्षेत्र है। विश्वविख्यात शारदा पीठ, जहां देवी सरस्वती के शिला रूप में विद्यमान होने की मान्यता है, हजारों वर्षों से भारत में ज्ञान का केन्द्र रहा है। आदि शंकराचार्य भी वहां गये थे।

माँ मंगला का भी प्रसिद्ध मंदिर भी इस क्षेत्र में है। 1960 में एक बड़ा बांध बना कर विद्युत उत्पादन शुरू किया गया। इसके कारण बनने वाली झील में पूरा मीरपुर नगर समा गया। आज भी मार्च–अप्रेल के महीनों में, जब झील का जलस्तर घट जाता है, पुराना मीरपुर शहर निकल आता है जहां गुरुद्वारा और माँ मंगला के मंदिर के अवशेष देखे जा सकते हैं।

काश्मीर

लगभग 22 हजार वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल, जिसमें से लगभग 16 हजार वर्ग कि.मी. ही हमारे पास है। 6 हजार वर्ग कि.मी. क्षेत्र पाकिस्तान के अवैध कब्जे में है। वर्तमान में अधिकांश जनसंख्या मुस्लिम है, लगभग 4 लाख हिन्दू वर्तमान में काश्मीर घाटी से विस्थापित हैं। वितस्ता और किशनगंगा नदियों की जलधाराओं से बना यह क्षेत्र श्रीनगर घाटी, लोलाब घाटी तथा किशनगंगा घाटी से मिलकर

बना है। यहाँ मुख्यतः काश्मीरी भाषा बोली जाती है, परन्तु एक तिहाई लोग पंजाबी–पहाड़ी बोलते हैं।

'राजतरंगिणी' विश्व के प्राचीनतम इतिहास ग्रंथों में से एक है। संस्कृत पद्य में काश्मीर का इतिहास इसमें संकलित है। कल्हण ने 1149–50 में इसकी रचना की। महाभारत से पूर्व राजा गोनन्द प्रथम से लेकर 1150 ई. तक के इतिहास का वर्णन राजतरंगिणी में है। इतिहास लेखन के इस कार्य को आगे बढ़ाया जौनराज ने। जैनुल आबेदीन के शासनकाल तक का इतिहास उन्होंने संकलित किया। 1459 में उनकी मृत्यु हुई। इसके बाद श्रीवर, प्रज्ञाभट्ट और शुक ने कश्मीर पर अकबर की विजय तक का इतिहास लिखा।

कल्हण के अनुसार गोनन्द वंश ने लगभग 300 वर्ष राज्य किया। इसके पश्चात दर्जनों राजा आये और गये किन्तु उल्लेखनीय शासन सम्राट अशोक का रहा जिसने 273 ई.पू. में काश्मीर पर अपना नियंत्रण स्थापित किया। उसने वर्तमान श्रीनगर से 5 किमी दूर प्राचीन राजधानी श्रीनगरी की स्थापना की। बौद्ध धर्म का प्रभाव भी उसके काल में बढ़ा।

अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य साम्राज्य टिक न सका और कालान्तर में बैक्ट्रिया और अफगानिस्तान की ओर से आये कुषाणों ने यहां अधिकार कर लिया। कुषाण राजा कनिष्क एक शक्तिशाली राजा था। उसने बौद्ध मत अपना लिया और उसे राजधर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया। कनिष्क ने काश्मीर में चतुर्थ विश्व बौद्ध सम्मेलन का आयोजन भी किया।

छठी शताब्दी के प्रारंभ में हूण सेनापति मिहिरकुल ने आक्रमण कर काश्मीर का राज्य हस्तगत कर लिया। मिहिरकुल के बाद हूणों का शासन कुछ ही समय चला। 523 ई. में स्थानीय कारकोटा वंश का दुर्लभवर्धन यहां का राजा हुआ। उसके शासन काल में काश्मीर आये चीनी यात्री ह्वेन सांग के वर्णन के अनुसार दुर्लभवर्धन का राज्य पश्चिम और उत्तर पश्चिम पंजाब तक विस्तृत था। इसी के वंश में एक अन्य राजा चन्द्रपीड़ ने अरब आक्रमण का मुंह तोड़ जवाब दिया।

ललितादित्य मुक्तपीड ने 724 ई. में सत्ता संभाली। यह अत्यंत प्रतापी राजा था। उसने एक ओर तिब्बत को जीता, तुर्कों को परास्त किया तो दूसरी ओर नीचे बंगाल तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। उसने काश्मीर में प्रसिद्ध मार्तण्ड मंदिर का निर्माण कराया। 760 ई. में उसकी मृत्यु हुई। 9वीं शती के मध्य तक उसका वंश राज्य करता रहा।

ललितादित्य के उत्तराधिकारियों के कुशासन के कारण उसका साम्राज्य समाप्त

हो गया। इसके पश्चात उत्पल राजवंश का उदय हुआ। उत्पल सम्राट अवन्तिवर्मन 855 ई में राजा बना और 28 वर्ष तक शासन किया। उसने साम्राज्य विस्तार के स्थान पर शासन व्यवस्था को सुदृढ़ करने तथा सुधार योजनाओं को लागू करने पर अधिक ध्यान दिया। उसके शासनकाल में राज्य सम्पन्नता के शिखर पर पहुंचा। उसने अवन्तिपुर नगर बसाया तथा अवन्तिस्वामिन् तथा अवन्तीश्वर नामक दो भव्य और विशाल मंदिरों का निर्माण कराया। प्रकृति के संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से राज्य में समृद्धि आयी।

1014 ई. में राजा जयपीड़ ने गजनी के सुल्तान के आक्रमण का सामना किया। 1339 में स्वात घाटी का शाहमीर शम्सुद्दीन राजा बना। यह काश्मीर का पहला मुस्लिम शासक था। शाहमीर के वंश में ही 1389 में सिकन्दर बुतशिकन (मूर्तिभंजक) सुल्तान बना। इसे काश्मीरी इतिहास का सबसे क्रूर शासक कहा जाता है। इसने अपने मंत्री मलिक सैफुद्दीन के साथ मिल कर काश्मीरी हिन्दुओं पर अमानवीय अत्याचार किये। पूरे काश्मीर में इन्होंने हिन्दू देवप्रतिमाओं और मंदिरों को ध्वस्त किया और उनकी ही सामग्री से मस्जिदों का निर्माण कराया। हिन्दुओं पर जजिया (कर) लगाया। जिन काश्मीरी हिन्दुओं ने इस्लाम कबूल नहीं किया उन्हें राज्य छोड़ कर भागना पड़ा।

इसके बाद अनेकों राजाओं की श्रंखला चली जिनमें सत्ता पाने और छीनने की होड़ रही। 1540 में हुमायूं के सेनापति मिर्जा हैदर ने काश्मीर पर आक्रमण किया किन्तु युद्ध में मारा गया। 1586 में अकबर ने तत्कालीन शासक युसुफ शाह को बंदी बना कर काश्मीर पर अधिकार किया।

जहांगीर और शाहजहां के शासन काल में कश्मीर से औपचारिक संबंध ही रहे। 1674–75 में खैबर पख्तूनख्वां में औरंगजेब के अभियान के समय हिन्दुओं के बलात् मतान्तरण के प्रयास किये गये। काश्मीरी हिन्दुओं ने सिख गुरु तेग बहादुर के सामने गुहार लगायी। गुरु तेग बहादुर ने उन्हें औरंगजेब को संदेश देने को कहा कि यदि वह गुरु को मतान्तरित कर ले तो काश्मीर के सभी हिन्दू इस्लाम कबूल कर लेंगे।

औरंगजेब के आदेश से जुलाई 1675 में सिख गुरु को मलिकपुर से बंदी बना कर सरहिंद ले जाया गया जहां उन्हें तीन माह तक बंदी बना कर रखा गया। इसके बाद उन्हें लोहे के पिंजड़े में रख कर अपमानित करते हुए दिल्ली ले जाया गया जहां उन्हें सार्वजनिक रूप से भीषण यातनाएं दी गयीं। इस पर भी इस्लाम कुबूल करने को तैयार न होने पर 24 नवंबर 1675 को दिल्ली के चांदनी चौक में उनकी

गर्दन काट दी गयी। इसके बाद काश्मीर में औरंगजेब के सूबेदार इफ्तिखार खान ने जल्दी ही राज्य की एक बड़ी जनसंख्या को बलपूर्वक इस्लाम स्वीकार करने को विवश कर दिया।

1752 ई. में अफगानिस्तान के अहमदशाह अब्दाली ने काश्मीर को जीता। अफगानों का राज्य 1819 ई. तक चला। दमन सहने के बाद भी मतान्तरण न करने वाले हिन्दुओं के लिये उनका शासनकाल काली रात के समान था। 1763–65 ई. तक राज्य में शिया–सुन्नी दंगों का भी दौर रहा। 1793 में मीर हजर खान ने अनेकों हिंदुओं को जीवित ही बोरों में सिलवा कर श्रीनगर की डल झील में फिंकवा दिया। बचे–खुचे काश्मीरी पंडित जान बचाने के लिये वहां से भागने को मजबूर हुए।

लद्दाख

ऐतिहासिक काल से बल्तिस्तान घाटी, सिंधु घाटी और जंस्कार का क्षेत्र लद्दाख कहलाता है। इसके दक्षिण में लाहौल–स्पीति, पूर्व में अक्साई चिन, पश्चिम में जम्मू – काश्मीर तथा उत्तर में जिनजियांग का क्षेत्र है।

कुनलुन पर्वत श्रृंखला और मुख्य हिमालय के बीच बसा लद्दाख एक विरल जनसंख्या वाला क्षेत्र है। गॉडविन आस्टिन (के2, 8611 मीटर) और गाशरब्रूम (8068 मीटर) सर्वाधिक ऊँची चोटियाँ हैं। यहाँ की जलवायु अत्यंत शुष्क एवं कठोर है। वार्षिक वृष्टि 3.2 इंच तथा वार्षिक औसत तापमान 5 डिग्री सें. है। नदियाँ वर्ष में कुछ ही समय प्रवाहित हो पाती हैं, शेष समय में जमी रहती है। सिंधु मुख्य नदी है। उत्तर में कराकोरम पर्वत तथा दर्रा है। करगिल में 9000 फुट से लेकर कराकोरम में 25000 फुट ऊंचाई तक की पर्वत श्रंखलायें है।

लद्दाख का क्षेत्र, जिसमें से लगभग 59 हजार वर्ग कि.मी. भारत के अधिकार में है, समुद्रतल से औसत 3 हजार मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। प्रकृति की अनमोल धरोहर के साथ ही बड़ी संख्या में बौद्ध मठ यहां हैं जहां दुनिया के कोलाहल से दूर शांति का अनुभव किया जा सकता है।

नामग्याल राजा भागन ने लद्दाख को संगठित किया और नामग्याल वंश की नींव डाली। नामग्याल वंश ने मध्य एशिया के बर्बर आक्रमणों का डट कर मुकाबला किया। मुगलों के साथ युद्ध में वे अवश्य पराजित हुए किन्तु वहां का प्रशासन चलाना मुगलों के लिये सहज न होने के कारण लद्दाख प्रायः स्वतंत्र बना रहा।

1834 में जम्मू के महाराजा गुलाब सिंह के सेनापति जोरावर सिंह ने लद्दाख को

विजय कर जम्मू राज्य में शामिल कर लिया। नामग्याल परिवार को स्टोक की जागीर दे दी गयी।

1850 के दशक में लद्दाख की ओर यूरोप का ध्यान आकर्षित हुआ और अनेक यूरोपीय भूवैज्ञानिकों, पर्यटकों तथा रोमांचक खेलों से जुड़े लोगों ने यहां का रुख करना शुरू किया। 1885 में लेह में मोरावियन चर्च ने अपना मुख्यालय प्रारंभ किया।

1948 में पाकिस्तानी आक्रमणकारी लद्दाख तक पहुंच गये और उन्होंने इसकी 69 हजार वर्गकिमी भूमि पर कब्जा कर लिया। भारतीय सेना द्वारा की गयी कार्रवाई में द्रास, करगिल और लेह को मुक्त करा लिया गया। स्कर्दू में महाराजा की सेना 14 अगस्त 1948 तक लड़ती रही किन्तु भारत सरकार द्वारा सैनिक सहायता न पहुंचने के कारण वह हिस्सा आज तक पाकिस्तानी कब्जे में है।

चीन ने 1949 में नुब्रा और जिनजियांग का मार्ग बंद कर दिया। 1955 में उसने जिनजियांग और तिब्बत को जोड़ने वाले मार्ग का निर्माण किया। पाकिस्तान की सहायता से उसने कराकोरम हाइवे का भी निर्माण किया है। भारत ने इसी बीच श्रीनगर–लेह राजमार्ग का निर्माण किया जिससे केवल दो दिन में लेह पहुंचा जा सकता है। इससे पूर्व इस दूरी को पार करने में 16 दिन लगते थे।

लद्दाख का करगिल क्षेत्र 1947, 1965 और 1971 में पाकिस्तान के साथ हुए युद्धों में एक प्रमुख मोर्चा रहा है। लद्दाख के उत्तर–पूर्वी किनारे पर स्थित सियाचिन ग्लेशियर 1984 से ही भारत–पाक के बीच तनाव का कारण रहा है। दोनों देशों की सेना की निरंतर तैनाती के कारण इसे विश्व के सबसे ऊंचे तथा सबसे लंबे चलने वाले युद्ध–क्षेत्र का दर्जा प्राप्त है।

1999 में भी पाकिस्तानी सेना ने घुसपैठ करके रणनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अनेक चोटियों पर कब्जा कर लिया था जिसे खाली कराने के लिये भारत को सीमित युद्ध का विकल्प अपनाना पड़ा था।

लद्दाख विश्व के सर्वाधिक ऊंचाई पर स्थित मरुस्थलों में से एक है। हिमालय की जिन चोटियों से टकरा कर मानसून पूरे देश में वर्षा करता है, उन्हीं चोटियों के कारण लद्दाख सदैव वर्षारहित रहता है। यहां वर्षा प्रायः नहीं होती है और पेयजल का एकमात्र स्रोत शीतऋतु में होने वाला हिमपात है। ग्रीष्म ऋतु की अवधि बहुत कम होती है किन्तु उसमें तापमान 5 से 30 डिग्री सेल्सियस तक रहता है। वहीं शीतकाल लम्बा होता है और तापमान –20 से –35 डिग्री सेल्सियस तक नीचे जाता है।

01 जुलाई 1979 को लद्दाख का विभाजन कर लेह और करगिल, दो जिलों का गठन किया गया। पश्चिम बंगाल के गोरखालैंड की तर्ज पर दोनों जिलों का संचालन 'स्वायत्त पर्वतीय विकास परिषद' द्वारा किया जाता है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, लद्दाख की कुल जनसंख्या लगभग 74,000 और क्षेत्रफल 59,146 वर्ग कि.मी. है। यह भारत के सबसे विरल जनसंख्या वाले भागों में से एक है।

लद्दाख में लोकसभा की एक और विधानसभा की 4 सीटें हैं। करगिल और लेह जिले में विधानसभा की दो–दो सीटें हैं। जिनके नाम क्रमशः जंस्कार व करगिल और नोब्रा व लेह है। दोनों जिले करगिल और लेह लद्दाख लोकसभा क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं।

लेह, जंस्कार, चांगथांग, नुब्रा, यह चार घाटियां बौध्दबहुल व सुरू घाटी मुस्लिमबहुल है। लद्दाख को चीन पश्चिम तिब्बत कहता है और सिन्धु नदी तक अपनी सीमा को बढ़ाना चाहता है। 1950 से ही इस क्षेत्र पर उसकी नजर है। लद्दाख के लगभग 36,500 वर्ग किलोमीटर पर 1962 में चीन ने आक्रमण कर अवैध कब्जा कर लिया, बाद में 5180 वर्ग किलोमीटर भूमि पाकिस्तान ने भेंटस्वरूप चीन को दे दी।

गिलगित–बल्तिस्तान

यह भारत का उत्तरी सीमांत है। यह वह क्षेत्र है जहां 6 देशों की सीमाएं मिलती हैं– पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ताजिकिस्तान, चीन, तिब्बत एवं भारत। यह मध्य एशिया को दक्षिण एशिया से जोड़ने वाला दुर्गम क्षेत्र है जो सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है तथा जिसके द्वारा पूरे एशिया में प्रभुत्व रखा जा सकता है।

1935 में जब सोवियत रूस ने ताजिकिस्तान को रौंद दिया तो अंग्रेजों ने गिलगित के महत्व को समझते हुये महाराजा हरिसिंह से समझौता कर वहां की सुरक्षा व प्रशासन की जिम्मेदारी अपने हाथ में लेने के लिये गिलगित के एक हिस्से को 60 वर्ष के लिये पट्टे पर ले लिया। उन्होंने इसे गिलगित एजेन्सी नाम दिया। 1947 में इस क्षेत्र को उन्होंने महाराजा को वापिस कर दिया। इसकी सुरक्षा के लिये अंग्रेजों ने एक अनियमित सैनिक बल 'गिलगित स्काउट्स' का भी गठन किया।

ब्रिटेन अपने आर्थिक हितों को देखते हुए मध्यपूर्व के देशों के साथ जोड़ने वाले सड़क मार्ग पर अपना अधिकार बनाये रखने तथा रूस और चीन के विस्तार को रोकने के लिये गिलगित एजेन्सी को रणनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण मानता था।

अमेरिका भी पहले गिलगित पर अपना प्रभाव रखना चाहता था और एक समय चीन के बढ़ते प्रभुत्व को रोकने के लिये सोवियत रूस की भी ऐसी ही इच्छा थी, इसलिये 60 के दशक में रूस ने पाकिस्तान का समय–समय पर समर्थन कर गिलगित को अपने प्रभाव क्षेत्र में लाने का प्रयास किया था। वर्तमान में गिलगित में चीन के 11 हजार सैनिक तैनात हैं। पिछले वर्षो में इस क्षेत्र में चीन ने लगभग 65 हजार करोड़ रूपये का निवेश किया व आज अनेक चीनी कंपनियां व कर्मचारी वहां पर काम कर रहे हैं।

इसकी सीमायें पश्चिम में खैबर–पख्तूनख्वा(पाकिस्तान) से, उत्तर में अफगानिस्तान के वाखन गलियारे तथा उत्तरपूर्व में चीन से मिलती हैं। गिलगित–बल्तिस्तान का कुल क्षेत्रफल 72,971 वर्ग किमी (28,174 मील) और वर्तमान अनुमानित जनसंख्या दस लाख है। 1947 में पाकिस्तान ने इस पर आक्रमण कर अवैध रूप से कब्जा कर लिया। इसका प्रशासनिक केन्द्र गिलगित शहर है।

1970 में पाकिस्तान ने गिलगित एजेंसी, लद्दाख वजारत का बल्तिस्तान, हुन्जा तथा नगर नामक क्षेत्रों का विलय कर उत्तरी क्षेत्र" (शुमाली इलाके जात) नामक यह प्रशासनिक इकाई बनाई। पाकिस्तान का दावा है कि यह क्षेत्र विवादित काश्मीर से अलग है जबकि यूरोपीय संघ भी इसे भारत के जम्मू–काश्मीर के वृहत क्षेत्र का ही हिस्सा मानता है।

कराकोरम राजमार्ग के साथ–साथ हुन्जा और शतियाल के बीच लगभग दस मुख्य स्थानों पर पत्थरों के काट कर और चट्टानों को तराश कर बनाये गये लगभग 20 हजार कला के नमूने मिलते हैं। इनको मुख्यतः इस व्यापार मार्ग का प्रयोग करने वाले हमलावरों, व्यापारियों और तीर्थयात्रियों के साथ साथ स्थानीय लोगों ने भी उकेरा है। इन कला के नमूनों में अनेक तो 5 हजार और 10 हजार ईसापूर्व के बीच के हैं। अकेले जानवरों, त्रिकोणीय पुरुषों और शिकार के दृश्यों को, जिनमें जानवरों का आकार आमतौर पर शिकारी से बड़ा है, को इन चित्रों में उकेरा गया है। पुरातत्वविद कार्ल जेटमर ने इन कला के नमूनों के माध्यम से इस पूरे इलाके के इतिहास को अपनी पुस्तक 'बिटवीन गंधार एंड द सिल्क रूटःरॉक कार्विंग अलोंग द काराकोरम हाइवे' में दर्ज किया है। उत्तरी क्षेत्र नाम का प्रयोग सबसे पहले संयुक्त राष्ट्र ने काश्मीर के उत्तरी भाग की व्याख्या के लिए किया। 1963 में उत्तरी क्षेत्र का एक छोटा हिस्सा जिसे 'शक्सगाम पथ' कहते हैं, पाकिस्तान द्वारा अस्थायी रूप से जनवादी चीन गणराज्य को सौंप दिया गया।

वर्तमान में गिलगित–बल्तिस्तान, सात जिलों में बंटा है। इसकी जनसंख्या लगभग दस लाख है। इसकी सीमायें पाकिस्तान, चीन, अफगानिस्तान तथा ताजिकिस्तान से मिलती हैं। उत्तरी लाइट इन्फैंट्री पाकिस्तानी सेना के अंतर्गत एक स्थानीय इकाई है और माना जाता है कि 1999 के करगिल युद्ध के दौरान इसने पाकिस्तान की सहायता की और संभवतः पाकिस्तान की ओर से युद्ध में भाग भी लिया। करगिल युद्ध में इसके 500 से अधिक सैनिक मारे गये, जिन्हें उत्तरी क्षेत्रों में दफन कर दिया गया। ललक जान, जो यासीन घाटी का एक शिया इमामी इस्माइली मुस्लिम (निजारी) सैनिक था, को करगिल युद्ध के दौरान उसके साहसी कार्यों के लिए पाकिस्तान के सबसे प्रतिष्ठित पदक निशान–ए–हैदर से सम्मानित किया गया।

29 अगस्त 2009 को गिलगित–बल्तिस्तान अधिकारिता और स्व–प्रशासन आदेश 2009, पाकिस्तानी मंत्रिमंडल द्वारा पारित किया गया था और फिर इस पर पाकिस्तान के राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षर किए गए। यह आदेश गिलगित–बल्तिस्तान के लोगों को एक लोकतांत्रिक ढंग से चुनी गयी विधानसभा के माध्यम से स्वशासन की आज्ञा देता है। पाकिस्तानी सरकार के इस कदम की पाकिस्तान, भारत के अलावा गिलगित–बल्तिस्तान में भी आलोचना की गयी है साथ ही पूरे इलाके में इसका विरोध भी किया गया है।

सितम्बर 2009 की शुरुआत में, पाकिस्तान ने चीन के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं, और इसके अनुसार चीन गिलगित–बल्तिस्तान में एक बड़ी ऊर्जा परियोजना लगाएगा जिसके अंतर्गत अस्तोर जिले में बुंजी पर 7,000 मेगावाट के बांध का निर्माण किया जायेगा। इस परियोजना का भारत ने विरोध किया है पर पाकिस्तान ने इस विरोध को यह कह कर खारिज कर दिया कि, भारत सरकार के विरोध का कोई वैधानिक आधार नहीं है। गिलगित–बल्तिस्तान को प्रशासनिक रूप से दो डिवीजनों और इन डिवीजनों को सात जिलों में विभाजित किया गया है। इन सात जिलों मे से दो जिले बल्तिस्तान और पांच जिले गिलगित डिवीजन में आते है।

सिख और डोगरा राज्य

सिखों के नवम गुरु तेग बहादुर के बलिदान के बाद काश्मीर में औरंगजेब के प्रति प्रत्यक्ष में भय तो मनों में घृणा का भाव था। 1707 में औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल शासन का प्रभाव काश्मीर में कम हुआ। 1746–47 में आई विनाशकारी बाढ़ और उसके बाद पड़े अकाल में काश्मीर की तीन–चौथाई जनसंख्या काल–कवलित हो गयी। इस स्थिति में मुगलों से निजात पाने के लिये कुछ स्थानीय सरदारों ने अफगानी अहमदशाह अब्दाली को आक्रमण कर अपना राज स्थापित करने के लिये आमंत्रित किया।

1753 में अब्दाली ने काश्मीर में अफगान शासन की शुरुआत की। उसके सूबेदार अब्दुल्ला खान इश्क अब्बासी के शासनकाल में क्रूरता चरम पर थी। लोग कहते थे कि अफगान पेड़ पर से फूल तोड़ने से पहले एक बार सोचते हैं लेकिन काश्मीरी की गर्दन काटने से पहले एक बार भी नहीं सोचते। अन्तिम अफगान सूबेदार जब्बार खान के अमानवीय अत्याचारों से पीड़ित एक काश्मीरी पंडित बीरबल धर ने पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह को काश्मीर पर न केवल आक्रमण के लिये प्रेरित किया अपितु सूबेदार की सेना से जुड़ी महत्वपूर्ण सूचनाएं दीं तथा सहायता का वचन भी दिया। इससे पूर्व रणजीत सिंह की सेनाएं 1812 और 1814 में काश्मीर पर आक्रमण कर चुकी थी किन्तु सफल नहीं हो सकी थीं। बीरबल धर के सहयोग से महाराजा रणजीत सिंह के सेनापति मिसर दीवान चन्द के नेतृत्व में सिख सेना ने जब्बार खान को 15 जुलाई 1819 को शोपियां के युद्ध में पराजित किया। इसके बाद काश्मीर पर अगले 27 वर्षों तक सिखों का आधिपत्य रहा।

काश्मीर में अफगानी शासन के समकालीन ही निकटवर्ती जम्मू में डोगरों का राज था। जम्मू के शासक राजा रणजीत देव प्रतापी राजा थे और उन्होंने मुगल साम्राज्य के पतन के बाद 22 छोटे डोगरा राज्यों को जीत कर जम्मू को बड़े और समृद्ध राज्य के रूप में स्थापित किया।

1808 में जम्मू का डोगरा राज सिखों के हाथों पराजित हो गया। रणजीत देव के

वंश की ही एक शाखा से जुड़े गुलाब सिंह महाराज रणजीत सिंह की सेना में शामिल हो गये। अनेक युद्धों में उनके वीरतापूर्ण प्रदर्शन के परिणामस्वरूप महाराजा ने 1920 में उन्हें जम्मू का शासक नियुक्त किया। महाराजा रंणजीत सिंह की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी राज्य का प्रभाव बनाये रखने में असफल रहे और अंग्रेजों के हाथों पराजित हुए। अंग्रेजों ने पंजाब को ब्रिटिश सत्ता के अधीन रखा किन्तु सतलज के उत्तर के विस्तृत क्षेत्र पर नियंत्रण बनाये रखने के लिये महाराजा गुलाब सिंह को शासक स्वीकार कर लिया।

1821 में गुलाब सिंह ने राजौरी और किश्तवाड़ को जीत कर अपने राज्य में मिलाया वहीं डेरा गाजी खां को सिख साम्राज्य में मिलाने में मदद की। 1827 में सिखों की ओर से हरी सिंह नलवा के साथ शैदू की लड़ाई में हिस्सा लिया तथा अफगान विद्रोह को कुचला। महाराजा रणजीत सिंह ने उनकी सेवाओं के लिये उन्हें भेरा, जेहलम, रोहताश और गुजरात की जागीरें भी प्रदान कीं। इसी बीच मंगला का किला भी गुलाब सिंह ने जीत लिया।

1834 में गुलाब सिंह के सेनापति जनरल जोरावर सिंह ने जंस्कार और बल्तिस्तान सहित लद्दाख का बड़ा हिस्सा जीत लिया। 1841 में तिब्बत जीतने के दुस्साहसिक अभियान में एक बर्फीले तूफान में फंस कर डोगरा सेना का एक बड़ा हिस्सा नष्ट हो गया। जोरावर सिंह की मृत्यु हो गयी साथ ही अधिकांश सेना मारी गयी। जोरावर सिंह की मृत्यु के बाद चीन व तिब्बत की संयुक्त सेना लद्दाख की ओर बढ़ी जिसे मेहता बस्ती राम ने दीवान हरीचन्द और वजीर रतनू के नेतृत्व में एक अन्य सेना के पहुंचने तक वीरतापूर्वक रोके रखा। किलेबंदी ध्वस्त होने के बाद चीन व तिब्बत की सेना भाग खड़ी हुई जिसका पीछा डोगरा सेना ने किया। चुशूल में हुए युद्ध में चीनी सेना पराजित हुई और उनका सेनापति मारा गया। दोनों राज्यों के प्रतिनिधियों के बीच चुशूल की संधि हुई जिसके अनुसार दोनों पक्षों ने एक–दूसरे के क्षेत्र का अतिक्रमण न करने का समझौता किया तथा डोगरा एवं तिब्बत राज्य की सीमाएं निश्चित हुईं।

सिखों की पराजय के बाद दो अलग–अलग संधियां हुईं। सिखों और अंग्रेजों के बीच 9 मार्च 1846 को हस्ताक्षर हुए। संधि की शर्तों के अनुसार युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में सिखों को 1.5 करोड़ रुपये देने थे परन्तु वे इतनी बड़ी राशि देने में असमर्थ थे। इस कारण उन्होंने अपने राज्य का एक भाग, जिसमें काश्मीर घाटी भी शामिल थी, अंग्रेजों को सौंप दिया।

16 मार्च 1846 को हुई एक अन्य संधि, जिसे अमृतसर संधि भी कहते हैं, के

अनुसार अंग्रेजों द्वारा क्षतिपूर्ति की राशि में से 75 लाख रुपये स्वेच्छा से देने के बदले चम्बा सहित संपूर्ण काश्मीर हमेशा के लिये गुलाब सिंह के स्वतंत्र अधिकार में दे दिये।

यहां तीन बातें अवश्य ध्यान रखने की हैं। पहली, अंग्रेज अफगानिस्तान सहित अनेक स्थानों पर लगातार युद्ध लड़ रहे थे इसलिये उनकी भी अपनी आर्थिक जरूरतें थीं जो गुलाब सिंह के दिये धन से पूरी होती थीं। दूसरी, उनकी प्राथमिकता काश्मीर में सुशासन स्थापित करने के साथ–साथ उसे किसी ऐसे हाथ में सौंपना था जो वहां शासन संचालन कर सके, साथ ही उनका मित्र भी बना रहे। तीसरी, अंग्रेजों को सबसे बड़ी चिन्ता रूस के बढ़ते प्रभाव की थी और ईस्ट इंडिया कंपनी अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिये रणनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण लद्दाख और गिलगित पर अपनी पहुंच बनाये रखना चाहती थी। इसके लिये उसे एक मजबूत सहयोगी राज्य की जरूरत थी। गुलाब सिंह इस मापदंड पर सर्वाधिक उपयुक्त थे।

इस परिस्थिति में आक्रमणकारी के रूप में स्थानीय विरोध का सामना करने के बजाय कंपनी ने उस क्षेत्र में गुलाब सिंह के संबंध का अपने हित में लाभ उठाने का विकल्प चुना। गुलाब सिंह भी चाहे धन देकर ही अपना राज्य विस्तार करने के इच्छुक थे। लेकिन यह स्पष्ट है कि यह सारी प्रक्रिया लिखित संधि के अनुसार हुई थी न कि किसी विक्रय पत्र के अनुसार, जैसा कि बाद में कुछ लोगों द्वारा इसे तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया। गुलाब सिंह के बाद महाराजा रणवीर सिंह और उनके बाद उनके पुत्र प्रताप सिंह ने सत्ता संभाली। 23 सितम्बर 1925 को महाराज प्रताप सिंह के भतीजे महाराजा हरिसिंह को गद्दी मिली।

अंतिम महाराजा

महाराजा हरि सिंह का जन्म 23 सितम्बर 1895 को हुआ। प्रारंभिक शिक्षा–दीक्षा भारतीय तथा यूरोपियन शिक्षकों से पाने के बाद 1908 में अजमेर के मेयो कॉलेज में उनका प्रवेश हुआ। देहरादून के इंपीरियल कैडेट कॉर्प में उनका सैनिक प्रशिक्षण हुआ। 23 सितम्बर 1925 को 30 वर्ष की आयु में उनका राज्याभिषेक हुआ। 9 मार्च 1931 को दक्षिण फ्रांस के कान्स में उनके पुत्र युवराज कर्ण सिंह का जन्म हुआ।

1930 में लंदन में प्रथम गोलमेज सम्मेलन का आयोजन हुआ। भारत के राजाओं के संगठन 'नरेन्द्र मण्डल' के अध्यक्ष के रूप में हरि सिंह ने इसमें भाग लिया। अंग्रेजों को विश्वास था कि वे कांग्रेस की आजादी की मांग से अलग अंग्रेजों के रुख का समर्थन करेंगे। किन्तु उन्होंने वहां पर दृढ़ता के साथ भारतीय पक्ष रखा तथा अंग्रेजों को भारतीयों की स्वतंत्रता और स्वशासन की विधिसम्मत आकांक्षाओं का आदर करने को कहा।

अपने भाषण में उन्होंने कहा कि अपनी जन्मभूमि के प्रति निष्ठावान भारतीय के रूप में राज्यों के राजा शेष भारतीयों की भांति ही कॉमनवेल्थ में सम्मान और समानता प्राप्त राष्ट्र के रूप में रहना पसंद करेंगे। उनके इस रुख ने अंग्रेजों के साथ उनके रिश्तों पर गहरा असर डाला। इसके बाद वे श्रीनगर में अपने रेजिडेन्ट के माध्यम से महाराजा पर निरंतर दवाब बनाते रहे।

महाराजा अभी यूरोप में ही थे कि काश्मीर में उनके खिलाफ आन्दोलन तेज हो गया। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से पढ़ कर लौटे शेख अब्दुल्ला, चौधरी गुलाम अब्बास और मौलवी अब्दुल रहीम इसका नेतृत्व कर रहे थे। शेख अब्दुल्ला मस्जिदों में जाकर महाराजा के खिलाफ जोशीले भाषण देते थे और राज्य में मुस्लिमों पर हो रहे अत्याचार की निन्दा करते थे। उनके समर्थन के लिये पंजाब से भी जत्थे आने लगे और जहां–तहां पत्थरबाजी होने लगी। महाराजा ने इसे नियंत्रित करने के लिये शेख अब्दुल्ला को गिरफ्तार कर लिया।

21 जून 1931 को श्रीनगर की एक मस्जिद में एक मुस्लिम नौजवान अब्दुल

कादिर (आज भी नहीं पता कि वह कौन था और कहां से आया था) द्वारा दिये गये उत्तेजक भाषण के बाद अराजकता फैल गयी। उस पर श्रीनगर सेन्ट्रल जेल में मुकदमा चला। 13 जुलाई 1931 को जेल के बाहर मुकदमा वापस लेने की मांग करते हुए बहुत बड़ी भीड़ जुटी। जल्द ही यह भीड़ हिंसक हो उठी और पुलिस पर पत्थर फेंके जाने लगे। अराजक भीड़ पर नियंत्रण हेतु पुलिस द्वारा चलायी गयी गोली से 21 लोग मारे गये।

इस घटना के विरोध में 15 जुलाई 1931 को श्रीनगर में बड़ा प्रदर्शन हुआ। अक्तूबर आते–आते काश्मीर में कथित रूप से उत्पीड़ित मुस्लिम भाइयों की सहायता के लिये पंजाब से जत्थे आने लगे। इन जत्थों के कारण जब राज्य में कानून व्यवस्था की स्थिति नियंत्रण से बाहर होने लगी तो ब्रिटिश सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा। 1846 की अमृतसर संधि के अनुसार वे इसके लिये बाध्य थे। यहां यह उल्लेखनीय है कि पंजाब अंग्रेजों के अधिकार में था और यह जत्थे वहां से ही आ रहे थे। किन्तु स्थिति नियंत्रण से बाहर होने तक उन्होंने इसे रोकने का कोई प्रयास नहीं किया।

अंग्रेजों के दवाब में महाराजा को नवंबर 1931 में भारत सरकार के विदेश एवं राजनीतिक विभाग के सर बी जी ग्लान्सी की अध्यक्षता में मुस्लिमों की मांगों के अध्ययन के लिये एक आयोग बनाना पड़ा। मार्च 1932 में इस आयोग ने मुस्लिम समाज की स्थिति का अध्ययन कर एक रिपोर्ट दी और अप्रेल 1932 में संवैधानिक सुधारों पर सिफारिशें सौंपीं। महाराजा ने प्रायः सभी मांगें तुरंत मान लीं।

इससे पूर्व ही 1928 में उन्होंने भूमि सुधार लागू किये थे। स्वयं की पहल पर महाराजा ने रघुनाथ मंदिर के दरवाजे अनुसूचित जातियों के लिये खुलवाये, लड़कों के लिये शिक्षा अनिवार्य की, मुसलमानों की शिक्षा के लिये वजीफे देने शुरू किये। 1934 में उन्होंने प्रजा सभा का गठन किया जिसमें 75 सदस्य थे। इनमें 33 सदस्य निर्वाचन द्वारा आने थे जिनमें 21 मुस्लिम, 10 हिन्दू और 2 सिख थे।

सितम्बर 1934 में हुए चुनाव में जम्मू–काश्मीर मुस्लिम कांफ्रेंस ने मुस्लिमों के लिये निर्धारित 21 में से 19 सीटों पर विजय प्राप्त की किन्तु एक वर्ष बाद अधिकारों की कमी का हवाला देते हुए इस्तीफा दे दिया।

यहां एक और पहलू सबका ध्यान आकर्षित करता है। रूस की क्रांति के बाद वहां की सोवियत सरकार से आशंकित ब्रिटिश कोई भी खतरा मोल नहीं लेना चाहते थे। गिलगित इस दृष्टि से रणनीतिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण था जिसकी

देख–रेख श्रीनगर में रह कर भारत में ब्रिटिश गवर्नर जनरल का पॉलिटिकल एजेन्ट करता था।

काश्मीर में चल रही उथल–पुथल के बीच अंग्रेजों ने दवाब बना कर गिलगित को हासिल करने की चाल चली। यद्यपि महाराजा उस पर अपनी संप्रभुता छोड़ने के लिये तैयार नहीं हुए, किन्तु संप्रभुता बनाये रखते हुए भी सिंधु नदी से आगे के गिलगित के एक हिस्से का नागरिक एवं सैनिक प्रशासन अंग्रेजों को सौंपना पड़ा। इसके लिये वह भ–ूभाग अंग्रेजों को 60 वर्ष के लिये पट्टे पर दिया गया।

आश्चर्यजनक रूप से अंग्रेजों को यह पट्टा हासिल होने के बाद महाराजा के विरुद्ध चल रहे आन्दोलन की तीव्रता में अचानक कमी आ गयी। इससे यह संदेह उत्पन्न होता है कि इस आन्दोलन को परदे के पीछे से अंग्रेजों का समर्थन हासिल था।

दूसरी ओर इस आंदोलन से जुड़े लोगों के बीच भी जम्मू और काश्मीर के आधार पर एक दूरी पनप रही थी। शेख यह भली प्रकार समझते थे कि जहां काश्मीर घाटी में उन्हें अपार लोकप्रियता प्राप्त है वहीं जम्मू, लद्दाख और गिलगित में उनका आधार नहीं के बराबर है। इसलिये आंदोलन के साथियों पर बढ़त हासिल करने के लिये उन्हें बाहरी मदद की जरूरत होगी। ब्रिटिश भारत में सक्रिय कांग्रेस उन्हें अपने लक्ष्य की पूर्ति में सहायक लगी। कुछ समय के बाद शेख अब्दुल्ला इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि केवल मुसलमानों के सवाल को उठा कर वे अपनी राजनैतिक महत्वाकांक्षा पूरी नहीं कर सकते थे।

1939 में जम्मू–काश्मीर मुस्लिम कांफ्रेंस का विभाजन हो गया और शेख के नेतृत्व में उसका तथाकथित सेकुलर अवतार जम्मू कश्मीर नेशनल कांफ्रेंस सामने आया। 1940 में जवाहरलाल नेहरू के काश्मीर दौरे से इसको पर्याप्त बल मिला। कांग्रेस द्वारा ब्रिटिश भारत के बाहर की रियासतों में रह रहे भारतीयों को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ने के लिये बनायी गयी आल इंडिया स्टेट्स पीपल्स कांफ्रेंस के साथ शेख ने नेशनल कांफ्रेंस को संबद्ध कर लिया। शेख के कुछ साथियों ने गुलाम अब्बास के नेतृत्व में ठप पड़ी मुस्लिम कांफ्रेंस को फिर से जिन्दा किया। गुलाम अब्बास का झुकाव जिन्ना की ओर था। विभाजन के बाद वे पाकिस्तान गये और वहां मंत्री बने।

महाराजा हरि सिंह दुनियां के बदलते रुख को पहचान रहे थे। 1931 में ही उन्होंने अपने राज्य में लोकतांत्रिक पद्धति स्थापित करने हेतु कदम बढ़ा दिये थे। 1934 में उन्होंने संवैधानिक व्यवस्था लागू की। 1943 में महाराजा ने संवैधानिक

सुधारों के अगले चरण के लिये रॉयल कमीशन का गठन किया किन्तु नेशनल कांफ्रेंस और मुस्लिम कांफ्रेंस, दोनों ही के विरोध के कारण यह प्रयास निरर्थक रहा।

1944 में नेशनल कांफ्रेंस ने अपना राजनैतिक–आर्थिक घोषणापत्र जारी किया जिसे 'नया कश्मीर' का नाम दिया गया। इसमें राष्ट्रवाद, पंथ–निरपेक्षता और वामपंथी समाजवाद को सिद्धांत रूप में स्वीकार किया गया। इसी वर्ष जिन्ना पाकिस्तान की मांग के लिये समर्थन जुटाने काश्मीर आये किन्तु वहां उन्हें 'गो बैक' के नारे सुनने को मिले।

1945 में नेशनल कांफ्रेंस के सोपोर सम्मेलन में जवाहरलाल नेहरू और खान अब्दुल गफ्फार खां ने भी हिस्सा लिया। इसी सम्मेलन में पं. नेहरू की अध्यक्षता में ऑल इंडिया स्टेट्स पीपल्स कांफ्रेंस की स्थायी समिति की भी बैठक हुई। 1946 में शेख अबदुल्ला इसके अध्यक्ष भी बनाये गये।

मई 1946 में भारत में कैबिनेट मिशन आया। इस समय शेख ने गांधीजी के 1942 के 'अंग्रेजों भारत छोडो' आन्दोलन की तर्ज पर 'महाराजा काश्मीर छोड़ो' आन्दोलन छेड़ दिया। शेख ने अमृतसर की संधि को काश्मीर की बिक्री बताते हुए उसे भंग करने तथा महाराजा हरि सिंह को पूरे राजवंश सहित काश्मीर घाटी छोड़ने को कहा। यह आंदोलन वास्तव में केवल काश्मीर घाटी तक ही सीमित था। राज्य के अन्य हिस्सों में इसका कोई प्रभाव न था। महाराजा के आदेश से शेख को गिरफ्तार कर लिया गया और उस पर राजद्रोह का मुकदमा चला।

इस घटनाक्रम में नाटकीय मोड़ तब आया जब पं. नेहरू वकीलों के एक दल के साथ मुकदमे में शेख की पैरवी करने के लिये स्वयं पहुंचे। उन्हें राज्य में प्रवेश की अनुमति नहीं दी गयी। कोहाला पुल से प्रवेश करते समय उन्हें रोक कर दोमेल ले जाया गया और डाक बंगले में दो दिन तक रहने के बाद वे वापस आ गये। बाद में इसे नेहरू की गिरफ्तारी के रूप में प्रचारित किया गया। कुछ समय पश्चात जुलाई में वे पुनः श्रीनगर गये और शेख अब्दुल्ला के मुकदमे के दौरान वहां मौजूद रहे तथा शेख अब्दुल्ला से भेंट भी की।

अगले कुछ माह उथल–पुथल से भरे थे। भारत की स्वतंत्रता, उसका विभाजन और पाकिस्तान का जन्म, पं. नेहरू का भारत का प्रधानमंत्री बनना तथा रियासतों के भारत अथवा पाकिस्तान में विलय की संभावना, पाकिस्तान की भौगोलिक संरचना आदि अनेक बातें स्पष्ट होती जा रही थीं। इस स्थिति में महाराजा को किसी एक राष्ट्र में विलय सहित अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लेने थे।

जिन्ना महाराजा पर पाकिस्तान के साथ विलय हेतु दवाब डाल रहे थे। दूसरी ओर शेख अब्दुल्ला के मामले को लेकर पं. नेहरू के मन में महाराजा के प्रति नाराजगी भरी हुई थी। वे आंख मूंद कर शेख अब्दुल्ला का समर्थन कर रहे थे। महात्मा गांधी ने उन्हें जनता की इच्छा के अनुरूप निर्णय करने को कहा।

गवर्नर जनरल माउंटबेटन का महाराजा को सुझाव था कि उन्हें 14 अगस्त से पहले किसी एक देश में विलय का निर्णय करना होगा। वे महाराजा को यह आश्वासन भी दे चुके थे कि यदि वे पाकिस्तान में विलय का निर्णय करते हैं तो भारत इसे अन्यथा नहीं लेगा। माउंटबेटन और लॉर्ड इस्मे ने महाराजा को पाकिस्तान के पक्ष में तुरन्त निर्णय लेने की सलाह देते हुए यह भी कहा कि यदि वे ऐसा करते हैं तो कांग्रेस बुरा नहीं मानेगी।

यह भी एक तथ्य है कि जम्मू–काश्मीर के पाकिस्तान में विलय के फैसले पर भारत को आपत्ति न होने संबंधी सुझाव ने स्टेट्स डिपार्टमेंट को भी प्रभावित किया था जिसकी राज्यों के विलय की कार्यवाही में मुख्य भूमिका थी। यह आश्चर्यजनक ही था कि स्टेट्स डिपार्टमेंट द्वारा महाराजा हरि सिंह को भारत में विलय के लिये सम्पर्क भी नहीं किया गया। यहां तक कि विभाजन से पूर्व विलय की शर्तों पर चर्चा करने के लिये आयोजित समिति की बैठक में आमंत्रित राज्यों के प्रतिनिधियों की सूची में जम्मू–काश्मीर के प्रतिनिधि का नाम नहीं था जबकि वह देश की सबसे बड़ी और प्रभावी रियासत थी।

महाराजा अनिर्णय की स्थिति से गुजर रहे थे। साथ ही समय भी गुजरता जा रहा था। पाकिस्तान, जिसके संस्थापक जिन्ना काश्मीर को अपनी जेब में मानते थे, धैर्य खो रहे थे। भारत विभाजन के बाद की त्रासदी का सामना कर रहा था और पाकिस्तान काश्मीर पर बलपूर्वक कब्जा करने की तैयारी में था।

इन परिस्थितियों पर महाराजा की भी नजर थी और भारत सरकार की भी। महाराजा अपने प्रधानमंत्री मेहरचंद महाजन के माध्यम से लगातार नेहरू और पटेल के सम्पर्क में थे तथा बदलती परिस्थितियों पर सरकार का ध्यान आकृष्ट कर रहे थे। दूसरी ओर नेहरू और उनके माध्यम से माउंटबेटन भी महाराजा पर यह दवाब बना रहे थे कि वे शेख अबदुल्ला को सत्ता सौंप दें।

सीमा पर अराजकता बढ़ती जा रही थी। जम्मू–काश्मीर राज्य के प्रधानमंत्री मेहरचंद महाजन तथा उपप्रधानमंत्री सरदार पटेल की चिंता भी बढ़ती जा रही थी। दोनों को लगता था कि महाराजा को तुरंत भारत में विलय का निर्णय करना चाहिये। रा. स्व. संघ के तत्कालीन सरसंघचालक माधवराव गोलवलकर 'गुरुजी'

को संदेश पहुंचाया गया कि वे देश के हित में महाराजा को भारत में विलय के लिये तैयार करें। गुरुजी की स्वीकृति प्राप्त होने पर उन्होंने ही महाराजा के साथ उनकी भेंट निश्चित की तथा सरदार पटेल से इसकी व्यवस्था में सहयोग का आग्रह किया। पटेल ने उन्हें विमान द्वारा श्रीनगर पहुंचाने की व्यवस्था की। 18 अक्तूबर को यह भेंट सम्पन्न हुई। इस भेंट से महाराजा का अनिर्णय समाप्त करने में सहायता मिली। इसके बाद ही महाराजा ने भारत में विलय का मन बनाया।

27 सितम्बर को पहली बार पाकिस्तान की ओर से आक्रमण की तैयारियों का समाचार प्राप्त हुआ। पं. नेहरू का जबरदस्त आग्रह था कि शेख अब्दुल्ला को सत्ता सौंपे बिना जम्मू–काश्मीर की परिस्थितियों का हल नहीं निकाला जा सकता। इसी कारण गतिरोध बना रहा और पाकिस्तानी आक्रमणकारियों को सीमा के भीतर घुस आने का अवसर मिल गया।

15 अक्तूबर से पाकिस्तानी सेना के निर्देश पर कबायलियों के भेष में आक्रमणकारी जम्मू–काश्मीर की ओर बढ़ने लगे। 22 अक्तूबर को मुजफ्फराबाद पर हमलावरों का कब्जा हो गया। महाराजा ने भारत सरकार से अपनी सहायता की मांग को दोहराया। 25 अक्तूबर को राज्यों के मंत्रालय के सचिव वी पी मेनन स्थिति के आकलन के लिये श्रीनगर गये। 26 अक्तूबर को महाराजा ने विलय पत्र पर हस्ताक्षर किये। 27 अक्तूबर को माउंटबेटन ने विलय को स्वीकार करने संबंधी कार्यवाही पूरी की। इसी दिन भारतीय सेना राज्य की रक्षा के लिये रवाना हो गयी।

राजद्रोह के अपराध मे सजा काट रहे शेख अब्दुल्ला को इससे पूर्व 29 सितंबर को ही रिहा कर दिया गया था। विलय पत्र के साथ माउंटबेटन को भेजे गये व्यक्तिगत पत्र में प्रकट विचार के अनुसार उन्होंने शेख को 30 अक्तूबर 1947 को आपातकालीन प्रशासन का प्रमुख नियुक्त किया। एक अन्य घोषणा द्वारा 5 मार्च 1948 को शेख अब्दुल्ला को जम्मू–काश्मीर का प्रधानमंत्री बना दिया गया। पाकिस्तान के खिलाफ शिकायत का मसौदा बनाते समय और संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के समक्ष 1 जनवरी 1948 को शिकायत दर्ज कराते समय महाराजा को विश्वास में नहीं लिया गया।

तत्कालीन उप–प्रधानमंत्री वल्लभ भाई पटेल को लिखे अपने पत्र में खेद जताते हुए हरि सिंह ने लिखा– "भारत में जम्मू–कश्मीर के विलय के दो महीने के भीतर ही भारत ने मंगला, अलीबेग, मीरपुर कस्बा, भिम्बर कस्बा, देवा और बटाला क्षेत्र, राजौरी कस्बा, और छंब से मिला हुआ सारा क्षेत्र, नौशेरा, झंगड़ और कोटली क्षेत्र

पाकिस्तान के हाथों गंवा दिये।" उन्होंने यहां तक लिखा कि "वह खुद भारतीय सेना की कमान का नेतृत्व करना चाहते हैं" ताकि राज्य से घुसपैठियों और पाकिस्तानी सैन्य बलों को खदेड़ा जा सके।

भारत सरकार ने उनकी इस पीड़ा को नजरअंदाज किया तथा शेख अब्दुल्ला को संरक्षण दिया। पटेल को लिखे एक अन्य पत्र में महाराजा ने शेख द्वारा किये जाने वाले अनपेक्षित और अपमानजनक व्यवहार की शिकायत की। इस पर भी शेख की मनमानी को रोकने के प्रयास के स्थान पर 1 मई 1949 को सरदार पटेल ने हरि सिंह को कुछ समय के लिये राज्य से बाहर जाने का सुझाव दिया। इसका परिपालन करते हुए उन्होंने स्वास्थ्य संबंधी कारणों से अस्थायी रूप से राज्य से बाहर जाने तथा उनकी अनुपस्थिति में उनकी विधिक, कार्यपालक व न्यायिक शक्तियां तथा अधिकारों का पालन युवराज कर्ण सिंह द्वारा किये जाने की उद्घोषणा की।

20 जून 1949 को उन्होंने जम्मू छोड़ा और मुंबई के लिये प्रस्थान किया। इसके बाद राज्य में उनकी अस्थियां ही वापस लौटीं। 26 अक्तूबर 1947 को श्रीमान इंद्र महेन्द्र राजराजेश्वर महाराजाधिराज, जम्मू एवं कश्मीर नरेश एवं तिब्बत आदि देशाधिपति की पदवी से विभूषित श्री हरिसिंह ने अपने राज्य का विलय भारत में किया। इसे काल की गति ही कहेंगे कि देश के सबसे बड़े और रणनीति तथा प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण राज्य को भारत को सौपने वाला यह महाराजा अपने राज्य और अपने लोगों से दूर एक दशक से भी अधिक तक एकाकी जीवन जीता रहा। 26 अप्रेल 1961 को 65 वर्ष की आयु में हृदय गति रुकने से उनका निधन हो गया।

जम्मू - काश्मीर का भारत में विलय

जम्मू–काश्मीर राज्य देश की सबसे बड़ी रियासत थी। दोनों देशों की सीमा पर होने के कारण दोनों ही देश स्वाभाविक ही उसे अपने साथ जोड़ने के इच्छुक थे। किन्तु भारत स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के अनुसार दोनों में से किसी रियासत में विलय पर निर्णय करने के एकमात्र अधिकारी वहां के राजा हरि सिंह थे। जिन्ना महाराजा को पाकिस्तान के साथ विलय हेतु दवाब डाल रहे थे। महात्मा गांधी ने उन्हें जनता की इच्छा के अनुरूप निर्णय करने को कहा। इसके बावजूद महाराजा हरि सिंह ने भारत में विलय का निर्णय किया।

17 जून 1947 को भारतीय स्वाधीनता अधिनियम–1947 ब्रिटिश संसद द्वारा पारित किया गया। 18 जुलाई को इसे शाही स्वीकृति मिली जिसके अनुसार 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई तथा ब्रिटिश डोमिनियन के एक भाग को काट कर नवगठित राज्य पाकिस्तान का उदय हुआ।

पाकिस्तान के अंतर्गत पूर्वी बंगाल, असम का सिलहट जिला, पश्चिमी पंजाब, उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत एवं सिंध का भाग आया। ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन रहा शेष भू–भाग भारत के साथ रहा।

इस अधिनियम से ब्रिटिश भारत की रियासतें अंग्रेजी राज की परमोच्चता से तो मुक्त हो गईं, परन्तु उन्हें राष्ट्र का दर्जा नहीं मिला और उन्हें यह सुझाव दिया गया कि भारत या पाकिस्तान में जुड़ने में ही उनका हित है। इस अधिनियम के लागू होते ही रियासतों की सुरक्षा की अंग्रेजों की जिम्मेदारी भी स्वयमेव समाप्त हो गई।

भारत शासन अधिनियम 1935, जिसे भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 में शामिल किया गया, के अनुसार विलय के बारे में निर्णय का अधिकार राज्य के राजा को दिया गया। भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 में सशर्त विलय के लिये कोई प्रावधान नहीं था।

26 अक्तूबर 1947 को महाराजा हरिसिंह ने भारत में जम्मू–काश्मीर का विलय उसी वैधानिक विलय–पत्र के आधार पर किया, जिसके आधार पर शेष सभी

रजवाड़ों का भारत में विलय हुआ था तथा भारत के उस समय के गवर्नर जनरल माउण्टबेटन ने उस पर हस्ताक्षर किये थे.... ''मैं एतद्द्वारा इस विलय पत्र को स्वीकार करता हूं'' दिनांक सत्ताईस अक्तूबर उन्नीस सौ सैंतालीस (27 अक्तूबर–1947)

महाराजा हरिसिंह द्वारा हस्ताक्षरित जम्मू–काश्मीर के विलय पत्र से संबंधित अनुच्छेद जम्मू–काश्मीर के भारत में विलय को पूर्ण व अंतिम दर्शाते हैं। विलय पत्र के अनुसार, जम्मू–काश्मीर भारत का स्थायी भाग है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद–1 के अनुसार जम्मू–काश्मीर राज्य भारत का अभिन्न अंग है। भारत संघ कहने के पश्चात दी गई राज्यों की सूची में जम्मू–काश्मीर क्रमांक–15 का राज्य है।

भारतीय स्वाधीनता अधिनियम 1947 के अनुसार शासक द्वारा विलय–पत्र पर हस्ताक्षर करने के उपरान्त आपत्ति करने का अधिकार स्वयं महाराजा सहित किसी को नहीं था।

1951 में राज्य संविधानसभा का निर्वाचन हुआ। संविधान सभा में सभी 75 सदस्य नेशनल कांफ्रेंस के थे और मौलाना मसूदी इसके अध्यक्ष बने। इसी संविधान सभा ने 6 फरवरी 1954 को राज्य के भारत में विलय की अभिपुष्टि की। 14 मई 1954 को भारत के महामहिम राष्ट्रपति ने भारतीय संविधान के अस्थायी अनुच्छेद 370 के अंतर्गत संविधान आदेश (जम्मू व काश्मीर पर लागू) जारी किया जिसमें राष्ट्र के संविधान की अनेक धाराओं को कुछ अपवादों और सुधारों के साथ जम्मू–काश्मीर राज्य पर लागू किया गया।

राज्य का अपना संविधान 26 जनवरी 1957 को लागू किया गया जिसके अनुसार–

धारा–3 : जम्मू–काश्मीर राज्य भारत का अभिन्न अंग है और रहेगा।

धारा–4 : जम्मू–काश्मीर राज्य का अर्थ वह भू–भाग है जो 15 अगस्त 1947 तक राज्य के राजा के आधिपत्य की प्रभुसत्ता में था।

धारा–5 : भारत के संविधान के अनुसार राज्य संबंधी जिन विषयों पर भारत की संसद विधिनिर्माण के लिये प्राधिकृत है, उन विषयों को छोड़ कर शेष सभी विषयों पर राज्य कार्यपालक व विधायक शक्तियों का प्रयोग कर सकता है।

इसी संविधान की धारा–147 में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि धारा– 3 व

धारा–5 तथा धारा 147 को कभी बदला नहीं जा सकता। यहां तक कि राज्य विधानसभा के समक्ष इस संबंध में कोई विधेयक विचारार्थ तक प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

1974 के इंदिरा–शेख अब्दुल्ला समझौते में पुनः यह कहा गया कि –

जम्मू–काश्मीर राज्य भारतीय संघ का एक अविभाज्य अंग है, इसका संघ के साथ अपने संबंधों का निर्धारण भारतीय संविधान के अस्थायी अनुच्छेद–370 के अंतर्गत ही रहेगा।

14 नवम्बर 1962 को संसद में पारित संकल्प एवं 22 फरवरी 1994 को संसद में सर्वसम्मति से पारित प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से यह कहा गया कि जो क्षेत्र चीन द्वारा (1962 में) व पाकिस्तान द्वारा (1947 में) हस्तगत कर लिये गये हैं, वह हम वापिस लेकर रहेंगे, और इन क्षेत्रों के बारे में सरकार कोई समझौता नहीं कर सकती।

भारत संयुक्त राष्ट्र संघ में

जम्मू–काश्मीर के भारत में वैधानिक विलय के बावजूद पाकिस्तान ने हमलावरों को अपना समर्थन जारी रखा। यहां तक कि पं नेहरू द्वारा पाकिस्तानी प्रधानमंत्री लियाकत अली को लिखे गये पत्र और स्मरण पत्रों का समय से उत्तर देने तक की जरूरत नहीं समझी गयी। पाकिस्तान दुनियां भर में यह ढिंढ़ोरा पीटता रहा कि हमलावरों से उसका कोई संबंध नहीं किंतु वर्षों बाद उनके मंत्रिमंडल में रहे शौकत हयात खां से जब एक पत्रकार ने पूछा कि क्या जिन्ना ने काश्मीर पर आक्रमण के आदेश दिये, उन्होंने कहा– हां। उस समय जिन्ना की मर्जी के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता था।

भारत सरकार यद्यपि सेना का उपयोग कर पाकिस्तानी अतिक्रमण को हटाने के लिये तैयार थी किन्तु गवर्नर जनरल माउंटबेटन इसके पक्ष में नहीं थे। ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली ने भी पं. नेहरू पर सैनिक अभियान न चलाने के लिये दवाब बनाया। इस परिस्थिति में भारत ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में 30 दिसम्बर 1947 को पाकिस्तान के विरुद्ध शिकायत दर्ज करायी। यह स्मरण रखने योग्य है कि सुरक्षा परिषद के समक्ष यह मुद्दा जम्मू–काश्मीर के विलय का नहीं था, जैसा कि प्रचारित करने का प्रयास किया जाता है। मुद्दा था कि जम्मू–काश्मीर का भारत में विलय हो चुका है किन्तु पाकिस्तान की सेना वहां अनधिकृत रूप से मौजूद है अतः सुरक्षा परिषद पाकिस्तान को वहां से अपने बलों को हटाने के निर्देश दे।

सुरक्षा परिषद के समक्ष भारत का पक्ष रखते हुए तत्कालीन केन्द्रीय मंत्री गोपालस्वामी अयंगर ने कहा कि सुरक्षा परिषद के समक्ष तात्कालिक मुद्दा जम्मू–काश्मीर में अतिक्रमण समाप्त करना तथा शांति स्थापित करना है। जम्मू–काश्मीर के लोगों की सुरक्षा करना भारत की नैतिक जिम्मेदारी है और राज्य की धरती पर जब तक एक भी आक्रमणकारी मौजूद है, वह इससे पीछे नहीं हट सकता।

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में इस संदर्भ में अनेक प्रस्ताव आये। 17 जनवरी 1948

को पहले प्रस्ताव में दोनों सरकारों से स्थिति में सुधार के लिये जरूरी कदम उठाने तथा किसी भी उत्तेजित करने वाले बयान अथवा कार्रवाई से बचने का आग्रह किया गया था। 20 जनवरी को एक तीन सदस्यीय आयोग के गठन का प्रस्ताव किया गया जो मौके पर जाकर स्थिति का अध्ययन करे। दोनों देशों ने इसे स्वीकार कर लिया।

भारत और पाकिस्तान के लिये संयुक्त राष्ट्र आयोग का सबसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव 13 अगस्त 1948 को सर्वसम्मति से पारित हुआ। इसके तीन भाग थे।

1. पहला भाग तुरंत युद्धविराम लागू करने के संबंध में था।

2. दूसरे भाग के अनुसार पाकिस्तान अपने सभी नियमित तथा अनियमित सैनिकों तथा नागरिकों को वापस बुलाये। पाकिस्तान द्वारा जम्मू–काश्मीर को पूरी तरह खाली किये जाने के पश्चात भारत कानून–व्यवस्था बनाये रखने के लिये आवश्यक बलों को छोड़ कर शेष सेना को हटाये।

3. भारत तथा पाकिस्तान की सरकारें इसकी पुष्टि करें कि राज्य के विलय का मुद्दा जनता की इच्छा के अनुसार तय होगा।

भारत सरकार के मत के अनुसार पाकिस्तान द्वारा पहले दोनों बिन्दुओं के अनुपालन के उपरान्त ही तीसरे बिन्दु पर वार्ता संभव है। चूंकि पाकिस्तान द्वारा पहले दोनों बिन्दुओं पर अमल नहीं किया गया इसलिये इस प्रस्ताव पर वार्ता आगे नहीं बढ़ सकी। आज तक भी वही स्थिति बनी हुई है।

21 अप्रेल 1948 को सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव द्वारा 20 जनवरी के प्रस्ताव में संशोधन कर इसकी सदस्य संख्या 5 कर दी गयी। भारत और पाकिस्तान के लिये संयुक्त राष्ट्र आयोग का काम युद्धविराम के पालन का पर्यवेक्षण करना तथा उसके उल्लंघन की शिकायत दर्ज कर संयुक्त राष्ट्र महासचिव को भेजना था।

27 जुलाई 1949 को भारत–पाकिस्तान के बीच कराची समझौता हुआ जिसमें युद्धविराम रेखा पर सहमति बनी। इसके साथ ही संयुक्त राष्ट्र आयोग की भूमिका समाप्त हो गयी। किन्तु 30 मार्च 1951 के एक अन्य प्रस्ताव द्वारा संयुक्त राष्ट्र द्वारा भारत व पाकिस्तान के लिये सैन्य पर्यवेक्षक समूह का गठन कर दिया गया जिसका काम उस युद्ध विराम रेखा के उल्लंघन पर नजर रखना, शिकायत दर्ज करना तथा उसकी जांच करना और उसे दोनों देशों तथा संयुक्त राष्ट्र महासचिव को भेजना था।

1971 में बांगलादेश के निर्माण तथा भारत–पाक युद्ध ने एक बार फिर तनाव को

चरम पर पहुंचा दिया। दोनों देशों की सेनाएं एक–दूसरे के क्षेत्र में थीं। इससे पूर्व 1965 में भी दोनों देशों के बीच संघर्ष हो चुका था। सुरक्षा परिषद ने 21 दिसम्बर 1971 को एक प्रस्ताव पारित कर कहा कि दोनों सेनाएं वापस हों तथा युद्धविराम रेखा को पुनः प्रभावी बना देने का काम भारत–पाकिस्तान के लिये सैन्य पर्यवेक्षक समूह की देख–रेख में हो।

जुलाई 1972 में शिमला समझौता हुआ जिस पर क्रमशः पाकिस्तान के राष्ट्रपति जुल्फिकार अली भुट्टो तथा भारत की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने हस्ताक्षर किये। समझौते में दोनों देशों के बीच नियंत्रण रेखा का भी निर्धारण हो गया।

भारत का यह मत था कि भारत व पाकिस्तान के लिये सैन्य पर्यवेक्षक समूह की नियुक्ति कराची समझौते में निर्धारित युद्धविराम रेखा के पर्यवेक्षण के लिये की गयी थी। अब, जबकि शिमला समझौते के बाद नयी परिस्थिति में कराची समझौता ही अप्रासंगिक हो गया है, भारत और पाकिस्तान के लिये सैन्य पर्यवेक्षक समूह की भूमिका स्वतः समाप्त हो गयी है, किन्तु पाकिस्तान इससे सहमत नहीं हुआ।

सुरक्षा परिषद ने इस पर कहा कि इस बिन्दु पर दोनों पक्षों में सहमति न होने के कारण भारत व पाकिस्तान के लिये सैन्य पर्यवेक्षक समूह को समाप्त करने का निर्णय सुरक्षा परिषद द्वारा ही लिया जा सकता है। सुरक्षा परिषद इस संबंध में आज तक भी निर्णय नहीं ले सकी इसलिये पर्यवेक्षक समूह अभी भी कार्यरत है। यह अवश्य उल्लेखनीय है कि भारत ने अपनी इस मान्यता पर अमल करते हुए जनवरी 1972 के बाद पर्यवेक्षकों के पास आज तक कोई शिकायत दर्ज नहीं करायी है। साथ ही वह पर्यवेक्षकों को आवास तथा यातायात जैसी आवश्यक सुविधाएं तो उपलब्ध कराता है किन्तु भारतीय क्षेत्र में उनकी गतिविधियों पर पाबंदी लगा दी है। जुलाई 2014 में भारत सरकार द्वारा उसे नयी दिल्ली में कार्यालय हेतु निशुल्क उपलब्ध कराये गये भवनों को भी खाली करने का नोटिस दे दिया गया।

विडंबना यह रही कि ब्रिटिश कूटनीति संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की कार्यवाही पर हावी रही जिसके चलते पीडित भारत और आक्रमणकारी पाकिस्तान को एक बराबर रख कर विचार किया गया। पाकिस्तान के आक्रमण को अकारण ही दोनों देशों के बीच विवाद के रूप में स्थापित किया गया। उसके पर्यवेक्षक आज भी राज्य में डटे हुए हैं और दोनों देशों के बीच चार युद्ध हो चुके हैं।

करगिल की घुसपैठ के बाद हुए सीमित युद्ध पर इन पर्यवेक्षकों ने क्या रिपोर्ट दी

और उस पर सुरक्षा परिषद ने क्या कार्यवाही की, यह प्रश्न आज भी बना हुआ है। इसके विपरीत, भारतीय भूमि को आक्रमणकारियों से मुक्त कराने के लिये सुरक्षा परिषद और संयुक्त राष्ट्र ने प्रस्ताव पारित तो किये, किन्तु इन प्रस्तावों का झुकाव सदैव पाकिस्तान की ओर रहा। पाकिस्तान द्वारा अतिक्रमित क्षेत्र को खाली करने के प्रस्ताव के अनुपालन के लिये रत्ती भर भी रुचि नहीं दिखाई।

प्रजा परिषद और उसका आंदोलन

जम्मू–काश्मीर राज्य पर डोगरा राजवंश का शासन होने के कारण जम्मू के लोगों को राज्यनीति के विरुद्ध जाकर कुछ करने की आवश्यकता कभी प्रतीत नहीं हुई। राजा हरि सिंह प्रजा–हित का ध्यान रखने वाले तथा सामाजिक सुधार में रुचि लेने वाले शासक थे इसलिये जम्मू की जनता ने किसी राजनैतिक अभियान को जन्म देने की पहल नहीं की। इसके विपरीत काश्मीर घाटी में महाराजा के विरुद्ध लम्बे समय से आंदोलन चल रहा था जिसे अंग्रेजों का परोक्ष समर्थन भी प्राप्त था।

महाराजा विरोधी इस आंदोलन के नेता के रूप में शेख अब्दुल्ला इस बीच स्थापित हो चुके थे। कांग्रेस तथा विशेषकर पं. नेहरू की निकटता और विश्वास उन्हें हासिल था। इसलिये जब राज्य के भारत में विलय के पश्चात सत्ता सौपने की बारी आयी तो काश्मीर घाटी में जन–नेता के रूप में शेख अब्दुल्ला मौजूद थे जबकि जम्मू, लद्दाख अथवा गिलगित–बल्तिस्तान में उनके कद का कोई राजनेता नहीं था। यदि ऐसा होता तो निश्चित ही या तो सत्ता उसे सौंपी जाती अथवा शेख को उसके साथ सत्ता का साझा करने के लिये विवश होना पड़ता। राज्य के तत्कालीन प्रधानमंत्री मेहरचन्द महाजन ने एक स्थान पर इस परिस्थिति का उल्लेख भी किया।

शेख ने प्रशासन हाथ में लेते ही अपने राजनैतिक विरोधियों से कड़ाई से निपटना शुरू किया। जम्मू के लोगों को महाराजा का समर्थक मानते हुए उन पर भी प्रहार शुरू हुए। इस स्थिति ने जम्मू के लोगों को अपने लिये राजनैतिक दल के गठन हेतु प्रेरित किया। मुजफ्फराबाद के डिप्टी कमिश्नर रह चुके श्री प्रेमनाथ डोगरा के सर्वमान्य व्यक्तित्व को आगे कर जम्मू प्रजा परिषद का गठन किया गया। इसके अध्यक्ष और मंत्री, क्रमशः हरि वजीर और हंसराज शर्मा यद्यपि नौजवान ही थे किन्तु इसके कार्यकलाप और संगठन के पीछे श्री बलराज मधोक का जुझारू नेतृत्व था।

शीघ्र ही प्रजापरिषद का संगठन पूरे राज्य में फैल गया। प्रजा परिषद द्वारा

समस्या को हल करने के लिये अनेक प्रयत्न किये गये। इसके नेतृत्व ने राज्य में शेख अब्दुल्ला तथा दिल्ली में सरदार पटेल तथा प्रधानमंत्री पं. नेहरू के समक्ष वास्तविक स्थिति रखी। इससे नाराज शेख ने श्री मधोक और परिवार सहित उनके माता–पिता को जम्मू से निष्कासित कर दिया तथा पं. प्रेमनाथ डोगरा को जेल में डाल दिया।

जेल से मुक्त होने के बाद 19 अप्रेल 1952 को श्री डोगरा ने राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्र प्रसाद से भेंट कर उन्हें ज्ञापन सौंपा जिसमें कहा गया था– "भारत की संतान होने के नाते यह स्वाभाविक ही है कि हम उन सभी कार्यवाहियों का विरोध करें जो हमें हमारी मातृभूमि से दूर करने के लिये हों, और चूंकि हमें भारत से विलग करने का प्रयत्न किया जा रहा है, हम घोषित करते हैं कि ऐसी कोई भी स्थिति, चाहे वह छोटी या बड़ी कैसी भी हो, हम स्वीकार नहीं करेंगे। हम चाहते हैं कि भारत का सम्पूर्ण संविधान जम्मू–काश्मीर में लागू किया जाय, हम सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुरक्षित हों, हमें प्रत्येक भारतीय की तरह मूलभूत अधिकार प्राप्त हों, भारत के प्रत्येक राज्य में जिस प्रकार भारत का राष्ट्र ध्वज मान्य है, वही यहां भी मान्य हो, शेख अब्दुल्ला का तैयार किया हुआ लाल झंडा हमें नहीं चाहिये और हम चाहते हैं कि हम उन्हीं कानूनों द्वारा शासित हों जो कि भारतीय संसद में बनाये जायें। यह हम अपना देशभक्तिपूर्ण कर्तव्य समझते हैं कि अपनी सम्पूर्ण शक्ति से उन सभी कार्यवाहियों का मुकाबला करें, फिर चाहे वे किसी भी सूत्र से आती हों, जो कि जम्मू और काश्मीर को भारत में पूर्णरूपेण विलीन करने के मार्ग में बाधक हैं"।

इसी बीच जम्मू–काश्मीर राज्य की संविधान सभा का निर्वाचन तय हुआ। प्रजा परिषद के 44 उम्मीदवारों सहित अधिकांश प्रत्याशियों के नामांकन रद्द कर दिये गये। शेख अब्दुल्ला की पार्टी नेशनल कांफ्रेंस के सभी 75 उम्मीदवारों को विजयी घोषित कर दिया गया। वास्तव में यह संवैधानिक व्यवस्था का खुला मखौल था।

आंदोलन बढ़ता गया

विरोध भी बढ़ता जा रहा था और शेख की कठोरता भी। उसके इशारे पर प्रशासन प्रजा परिषद के कार्यकर्ताओं और समर्थकों पर मनमाने अत्याचार कर रहा था। गिरफ्तार सूबेदार बसंत सिंह को डिप्टी कमिश्नर की कोर्ट ने नेशनल कांफ्रेंस की सदस्यता स्वीकार करने का आदेश दिया। वसंत सिंह द्वारा सदस्यता फॉर्म भरने से इंकार करने पर उसे जेल भेज दिया गया। अहिंसक आंदोलनकारियों पर लाठी, आंसूगैस और गोली दिन–प्रति–दिन की घटनाएं हो गयी। गिरफ्तार आंदोलनकारियों को बिना पर्याप्त गर्म कपड़ों के बर्फीली चोटियों पर छोड़ देना, रणवीर नहर के ठंडे पानी में खड़े रखना, आंदोलनकारियों के रिश्तेदारों के पेंशन, परमिट, लाइसेंस और सम्पत्ति जब्त कर लेना आदि सामान्य बात थी।

शेख अब्दुल्ला के दवाब में हुए कथित दिल्ली समझौते, राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृत राजप्रमुख को असंवैधानिक ढ़ंग से बदल कर सदरे रियासत की घोषणा आदि घटनाक्रम ने राज्य में अनिश्चितता और आशंका का वातावरण उत्पन्न कर दिया। परिणामस्वरूप प्रजा परिषद को निर्णायक आन्दोलन की ओर बढ़ने को बाध्य होना पड़ा। 23 नवंबर 1952 को जम्मू में एक जनसभा को संबोधित करते हुए पं प्रेमनाथ डोगरा को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। इसके साथ ही पूरे जम्मू संभाग में प्रत्यक्ष आंदोलन प्रारंभ हो गया। हर दिन हजारों की संख्या में अहिंसक आंदोलनकारी सड़कों पर निकल पड़ते। पुलिस के अमानवीय अत्याचार भी उन्हें रोक न पाते। शेखशाही के खिलाफ 5 मार्च 1953 तक यह आंदोलन निरंतर चलता रहा।

14 दिसम्बर को छम्ब में कचहरी भवन पर तिरंगा फहराने का प्रयास करने वाले 36 वर्षीय युवक मेला राम को पुलिस ने गोलियों से भून दिया। पुलिस गोलियां चलाती रही किन्तु जनता ने कचहरी पर तिरंगा फहरा कर ही दम लिया। मेलाराम के शव को लेकर आगे बढ़ रहे जलूस पर भी मिलीशिया ने गोलियां चलायीं जिसमें पुनः 5 और आंदोलनकारियों की मृत्यु हुई। भद्रवाह में 250 लोग घायल हुए। इनमें बड़ी संख्या में महिलायें भी थीं।

11 जनवरी को पठानकोट–जम्मू मार्ग पर हीरा नगर में हुई भीषण गोलीबारी के बीच बिहारी लाल और भीकम सिंह नामक दो युवक लापता हुए। बाद में उनके अधजले शव एक नाले में पड़े मिले। अंतिम संस्कार के पश्चात उनकी अस्थियों के पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश होते हुए 6 मार्च को दिल्ली पहुंचने की घोषणा की गयी। पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के सहारनपुर और मेरठ जैसे स्थानों पर हजारों लोगों ने एकत्र होकर इन बलिदानियों को श्रद्धांजलि अर्पित की।

दिल्ली में आंदोलन की आग

जम्मू में आंदोलन अपने चरम पर था। हर दिन आंदोलनकारियों पर लाठी और गोली चल रही थी। 30 दिसम्बर को सुन्दरवनी में शेख की मिलीशिया ने निहत्थे आंदोलनकारियों पर गोलियां चलायीं जिसमें 25 वर्षीय कृष्णलाल और 20 वर्षीय रामजी दास नामक सत्याग्रहियों की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गयी। 3 महिलाओं सहित 25 लोग घायल हुए। बेलीराम नामक एक युवक, जो गोली लगने से घायल हो गया था, का सिर एक भारी पत्थर से कुचल कर उसकी हत्या कर दी गयी।

जब यह समाचार दिल्ली पहुंचा तो अगले ही दिन पूरे दिल्ली में जुलूस और विरोध प्रदर्शनों का क्रम शुरू हो गया। हौज काजी में पुलिस ने कठोरतापूर्वक लाठियां बरसाईं जिसमें 60 लोग घायल हुए। आंसू गैस के गोले भी दागे गये। इसने विरोध को और अधिक गति दे दी। इस समय कानपुर में भारतीय जनसंघ का वार्षिक अधिवेशन जारी था। जनसंघ ने एक आठ सदस्यीय तथ्यखोजी शिष्टमण्डल जम्मू भेजने की घोषणा की किन्तु भारत सरकार ने उसे वहां जाने की अनुमति नहीं दी।

जनसंघ, हिन्दू महासभा और रामराज्य परिषद ने संयुक्त रूप से 5 मार्च को जम्मू दिवस मनाये जाने की घोषणा की। पंजाब व उत्तर प्रदेश के सभी बड़े स्थानों पर धारा 144 लागू कर दी गयी थी। करपात्री जी महाराज की अध्यक्षता में दिल्ली स्टेशन के सामने के मैदान में एक विशाल सभा का आयोजन हुआ जिसे जनसंघ के अध्यक्ष डॉ श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने संबोधित किया। इसी सभा में अगले दिन जम्मू के शहीदों के अस्थिकलश आने की सूचना दी गयी।

6 मार्च की दोपहर से ही लोग दिल्ली स्टेशन पर जुटने शुरू हो गये। 5 बजते–बजते पूरा स्टेशन खचा–खच भर गया। भारी मात्रा में पुलिस भी तैनात थी और उसने अस्थिकलश अपने कब्जे में लेने की पूरी तैयारी कर रखी थी। इसका संकेत मिलते ही आयोजकों ने अस्थिकलशों को कुछ पहले ही ट्रेन से

उतार लिया तथा उन्हें लेकर सुरक्षित चांदनी चौक पहुंच गये। जनता को समाचार मिला तो हुजूम चांदनी चौक की ओर बढ़ चला।

अस्थि कलश को श्रद्धांजलि अर्पित करने चांदनी चौक पहुंचे डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, बैरिस्टर निर्मलचन्द्र चटर्जी, नन्दलाल शर्मा तथा वैद्य गुरुदत्त को पुलिस ने भीड़ के बीच गिरफ्तार कर लिया। शेष जनता को आंसूगैस के गोले छोड़ कर तथा लाठी चला कर तितर–बितर करने की कोशिश की। जनता वहां से हट गयी किन्तु कुछ देर बाद ही टाउन हॉल को घेर लिया। यहां पुनः आंसूगैस तथा लाठीचार्ज हुआ किन्तु जनता टस से मस न हुई। आधी रात तक दिल्ली के विभिन्न क्षेत्रों में सरकार विरोधी नारे गूंजते रहे।

डॉ मुखर्जी की गिरफ्तारी तथा पुलिसिया अत्याचार के विरुद्ध दिल्ली व पठानकोट में सत्याग्रह की घोषणा की गयी। देश भर से जत्थे आने लगे। पुलिस उनसे निरंतर मार–पीट तथा असभ्य व्यवहार करती थी। उत्तर प्रदेश जनसंघ की उपाध्यक्ष माता हीराबाई अय्यर तथा उनके साथ की अन्य महिला सत्याग्रहियों को आधी रात में पुलिस ने दिल्ली से 20 किलोमीटर दूर घने जंगल में ले जाकर छोड़ दिया। यहां तक कि महिलाओं के सुहाग के चिन्ह चूड़ियों को भी जेल के अधिकारियों ने तोड़ दिया।

एक ओर जहां सत्याग्रहियों को पुलिस भीड़ के सामने अपमानित करती थी वहीं जेल के अंदर भी दमनचक्र चालू था। जम्मू में गिरफ्तार सत्याग्रहियों को श्रीनगर की भीषण ठंड में बिना गर्म कपड़ों भेज दिया गया। निरंतर मारपीट और हथकड़ी–बेड़ी पहनाने जैसी घटनाएं तो आम थीं। इनके विरोध में 20 अप्रेल को "दमन विरोधी दिवस" का आह्वान किया गया।

प्रजा परिषद को इस बात का श्रेय है कि उसने जम्मू–काश्मीर में भारत के साथ अपनी पहचान जोड़ने वाले नागरिकों को एकजुट होने के लिये एक मंच प्रदान किया, उसके नेतृत्व में राज्य में चले राष्ट्रवादी शक्तियों के आन्दोलन ने जम्मू–काश्मीर को भारत से अलग करने के अंग्रेजी षड्यंत्र तथा काश्मीर का सुल्तान बनने के शेख अब्दुल्ला के मंसूबों का जनान्दोलन द्वारा सफल प्रतिकार किया तथा इस मुद्दे पर देश का ध्यान आकृष्ट करने तथा प्रबल जनमत निर्माण करने में सफल रहा।

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी का बलिदान

प्रजा परिषद के नेतृत्व में जब जम्मू की जनता अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष कर रही थी, अगस्त 1952 में नेहरू मंत्रिमण्डल में उद्योग मंत्री रह चुके राष्ट्रीय नेता एवं भारतीय जनसंघ के संस्थापक डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी तीन अन्य संसद सदस्यों सर्वश्री वी जी देशपाण्डे, रामनारायण सिंह तथा बैरिस्टर उमाशंकर त्रिवेदी के साथ जम्मू गये। एक विधान, एक प्रधान और एक निशान के नारे के साथ चल रहे आंदोलन को डॉ मुखर्जी के समर्थन ने बल दिया। इस अवसर पर एक सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने घोषणा की – "या तो विधान लूंगा या बलिदान दूंगा"।

दिसम्बर 1952 में कानपुर में सम्पन्न जनसंघ के पहले अधिवेशन में पं. प्रेमनाथ डोगरा को प्रतिनिधियों के सम्मुख जम्मू–काश्मीर की स्थिति रखने के लिये आमंत्रित किया गया। अधिवेशन में इस संबंध में सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें प्रजा परिषद के आन्दोलन को पूर्ण समर्थन देने तथा इसे देशव्यापी बनाने का फैसला किया गया। इसके लिये अन्य राष्ट्रवादी संगठनों का सहयोग प्राप्त करने की भी बात कही गयी।

संसद के अंदर और बाहर डॉ. मुखर्जी ने जम्मू–काश्मीर का मामला जोरदार ढ़ंग से उठाया। इस संबंध में उनका पं. नेहरू और शेख अब्दुल्ला से लंबा पत्र व्यवहार भी चला। 9 जनवरी 1953 को उन्होंने पं. नेहरू को पहला पत्र लिखा जिसमें उन्होंने प्रजा परिषद की न्यायोचित मांगों को न ठुकराने की अपील की। यद्यपि 20 जनवरी को प्राप्त इस पत्र के उत्तर से यह स्पष्ट था कि इस विनम्र अपील का कोई असर नहीं हुआ। श्री दीनदयाल उपाध्याय को लिखे अपने पत्र में श्री मुखर्जी ने यह आशंका व्यक्त करते हुए लिखा – "आन्दोलन अवश्य करना पड़ेगा। नेहरू अपनी गलत हठ छोडेंगे, ऐसी आशा दिखायी नहीं देती।" लेकिन फिर भी उन्होंने अपने प्रयास जारी रखे और संवाद बनाये रखने का प्रयास किया।

डॉ. मुखर्जी इस संबंध में परस्पर मिलकर विस्तृत बात–चीत के लिये निरंतर समय मांगते रहे किन्तु पं. नेहरू ने वार्ता की इच्छा तक न जताई। 9 जनवरी के

पत्र में उन्होंने लिखा – “यदि आप चाहते हैं कि मैं आपसे और शेख अब्दुल्ला से व्यक्तिगत रूप से मिल कर बातें करूं, तो आप मुझे बतायें। मैं प्रसन्नतापूर्वक आपकी इच्छानुसार वैसा करूंगा।” इसके उत्तर में पं. नेहरू ने व्यस्तता जताते हुए मिलने से इनकार कर दिया किन्तु उनसे जम्मू आन्दोलन को खत्म करने के लिये अपने प्रभाव का इस्तेमाल करने की बात कही।

पं. नेहरू और डॉ. मुखर्जी के बीच दो माह तक पत्र–व्यवहार चलता रहा किन्तु कोई मार्ग नहीं निकला। 28 फरवरी के अंतिम पत्र में श्री मुखर्जी ने पं. नेहरू को सूचित करते हुए सारा पत्र–व्यवहार सार्वजनिक कर दिया ताकि जनता को सही स्थिति की जानकारी मिल सके। संसद में भी डॉ. मुखर्जी ने उनसे प्रजा परिषद नेताओं से वार्ता का आग्रह किया किन्तु उनका जवाब था– नहीं करूंगा। उन्होंने यहां तक कहा कि यदि मैं शेख अब्दुल्ला के स्थान पर होता तो इससे भी अधिक कड़ी कार्रवाई करता।

जम्मू में शेख की तानाशाही पर लगाम नहीं थी तो दिल्ली में पं. नेहरू की जिद थी कि वह जनता के इस आन्दोलन को लाठी और गोली के बल पर कुचल देंगे। विपक्ष के नेता और दल ही नहीं, स्वयं सत्ता पक्ष के लोग भी इसके मूकदर्शक बने रहने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर पा रहे थे। 5 मार्च को दिल्ली स्टेशन के सामने उमड़े जन समूह को संबोधित करते हुए डॉ. मुखर्जी ने कहा – “अब हमारे सामने दो रास्ते शेष बचे हैं। पहला रास्ता इस अन्याय के समक्ष सिर झुका कर बैठ जाने का रास्ता है जिसका अर्थ है शेख अब्दुल्ला की दुर्नीति का विषफल प्रकट होने देना। दूसरा रास्ता है इस अन्याय का परिमार्जन करने के लिये शुद्ध देशभक्ति से प्रेरित होकर सर्वस्व त्याग करने की तैयारी करना। शांतिपूर्ण ढ़ंग से पं. नेहरू व अब्दुल्ला की राष्ट्रघाती नीति का विरोध करते हुए ऐसा जनमत प्रकट करना कि आने वाले भयंकर संकट से देश को बचाने के लिये सरकार को बाध्य किया जा सके। अत्यंत गंभीर एवं दृढ़ स्वर में डॉ. मुखर्जी ने घोषणा की – ”हमने दूसरा मार्ग स्वीकार किया है“।

मार्च–अप्रेल में दिल्ली में सत्याग्रह का तांता लगा हुआ था। पूरे देश से सत्याग्रही आकर गिरफ्तारी दे रहे थे। सड़क पर ही नहीं, जेल में भी उनके साथ दुर्व्यवहार हो रहा था। शासन की दमन नीति चरम पर थी। ऐसे में अंतिम प्रयास के रूप में डॉ श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने 7 मई को सहसा घोषणा कर दी – ”मैं कल जम्मू जाऊंगा“। यात्रा प्रारंभ करने से पहले डॉ. मुखर्जी ने अपनी यात्रा के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए एक वक्तव्य दिया। इसमें कहा गया– मैं पंजाब के दौरे के लिये

जा रहा हूं। यद्यपि जिन स्थानों पर 144 धारा लगी है, वहां जनसभाओं में भाषण देना संभव नहीं हो सकेगा, किन्तु फिर भी मैं वहां कार्यकर्ताओं और जनता के प्रमुख व्यक्तियों से मिलूंगा और वहां की स्थिति का अध्ययन करना चाहूंगा। मुझे जम्मू से ऐसे समाचार मिल रहे हैं कि वहां दिल को दहला देने वाला भीषण दमनचक्र जारी है। गत तीन माह में हमने कई बार प्रयत्न किया कि निष्पक्ष जांच के लिये लोग भेजे जायें, किन्तु उन्हें वहां जाने के लिये अनुमति नहीं दी गयी।

श्री नेहरू बार–बार दोहराते हैं कि जम्मू–काश्मीर शत–प्रतिशत भारत में मिला दिया गया है। फिर भी यह आश्चर्य की बात है कि बिना परमिट के कोई उस राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता। जो भारत की राष्ट्रीयता और एकता के लिये प्रयत्नशील हैं, उन्हें वहां जाने की अनुमति नहीं मिलती। मैं नहीं समझता कि भारत सरकार को भारत के किसी भी हिस्से में, जिसमें श्री नेहरू के अनुसार जम्मू–काश्मीर भी शामिल है, किसी के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाने का अधिकार है। किसी प्रदेश में प्रवेश करने के बाद यदि कोई वहां के किसी कानून की अवहेलना करता है तो उसे उसके परिणामों का सामना करना होगा।

मेरा जम्मू जाने का उद्देश्य यही है कि मैं वहां की स्थिति का सच्चा हाल जान सकूं। मैं वहां प्रजा परिषद के बाहर के लोगों से भी मिलूंगा। जम्मू की जनता की इच्छा को समझने का प्रयत्न करूंगा और यदि संभव हो सका तो आंदोलन को शांतिपूर्ण और आदरयुक्त ढ़ंग से बन्द करवाने का भी यत्न करूंगा जो कि न केवल काश्मीर बल्कि सम्पूर्ण भारत के लिये न्यायपूर्ण व हित का होगा। यदि मुझे जम्मू जाने दिया गया तो मैं अपनी ओर से शेख अब्दुल्ला से व्यक्तिगत बात–चीत करने का यत्न करूंगा।

पत्रकारों के अतिरिक्त प्रधानमंत्री नेहरू को भी उन्होंने अपना कार्यक्रम सूचित करते हुए तार भेजा। उन्होंने लिखा – "आपकी जानकारी के लिये मैं आपको बताना चाहता हूँ कि मैंने जानबूझ कर परमिट प्राप्त करने के लिये आवेदन नहीं किया। चूंकि आपकी सरकार ने योजनापूर्वक ढ़ंग से कई लोगों को, जो कि आपकी काश्मीर नीति से मत–भिन्नता रखते हैं, परमिट देने से इनकार कर दिया है। नैतिक, वैधानिक तथा राजनीतिक, तीनों दृष्टियों से मेरा जम्मू जाना न्यायपूर्ण है।"

उन्होंने यह भी कहा कि – "मैं उस भारतीय संसद का सदस्य हूँ जिसमें काश्मीर सम्मिलित है और संसद के प्रत्येक सदस्य का यह कर्तव्य है कि देश के किसी भी भाग में किसी भी स्थिति का अध्ययन करने वह स्वयं जाये"।

शेख अब्दुल्ला को भेजे गये एक अन्य तार में उन्होंने लिखा– "मैं ऐसी स्थिति का निर्माण करने के लिये उत्सुक हूं जिसके द्वारा परस्पर सदभावना और शांतिपूर्ण समझौते पर पहुंचा जा सके। जम्मू की स्थिति का अध्ययन करने के बाद मैं आपसे मिलने की संभावना का भी स्वागत करता हूं।" इसके जवाब में उन्हें शेख अब्दुल्ला का तार मिला जिसमें उन्हें जम्मू न आने के लिये कहा गया था।

यहां यह उल्लेखनीय है कि जब दिल्ली में आंदोलन चरम पर था, लोकसभा के दो अन्य सदस्यों, जनसंघ के कोषाध्यक्ष बैरिस्टर यू एम त्रिवेदी और हिन्दू महासभा के महामंत्री विष्णु घनश्याम देशपाण्डे ने काश्मीर जाने की घोषणा कर दी थी। 17 अप्रेल को उन्हें जालंधर में गिरफ्तार कर लिया गया किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने उन्हें निर्दोष घोषित करते हुए रिहा कर दिया। भारत सरकार ने इससे यह सबक लिया कि यदि उन्हें सर्वोच्च न्यायालय की सीमा में रोका गया तो उन्हें भी मुक्त कर दिया जायेगा। इससे नेहरू–शेख की योजना पूरी नहीं होती थी। उस समय तक जम्मू–काश्मीर भारत के सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में नहीं था इसलिये उन्हें जम्मू–काश्मीर की सीमा में गिरफ्तार किया गया।

पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी, जो उस समय पत्रकार के रूप में उनके साथ थे, के अनुसार गुरुदासपुर के डिप्टी कमिश्नर ने स्वयं आकर कहा था कि आपके जाने की सारी व्यवस्था हम करेंगे। उसने कहा, हम आपको रोकना नहीं चाहते। हमारी तरफ से आपकी यात्रा में कोई रुकावट नहीं होगी। हम आपकी यात्रा को सुविधाजनक बनाने के लिये सब कुछ करने को तैयार है। किन्तु जैसे ही वे माधोपुर के पुल पर आधी दूरी तक पहुंचे, जम्मू–काश्मीर की पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया।

डॉ. मुखर्जी की गिरफ्तारी से देश भर में गुस्से की लहर दौड़ गयी। जगह–जगह विरोध प्रदर्शन होने लगे। दूसरी ओर जम्मू–काश्मीर उच्च न्यायालय में गिरफ्तारी के विरुद्ध प्रार्थनापत्र दाखिल करने पहुंचे बैरिस्टर उमाशंकर त्रिवेदी को सरकार ने उनसे मिलने की अनुमति नहीं दी। जम्मू–काश्मीर उच्च न्यायालय द्वारा अनुमति दिये जाने पर ही वे डॉ. मुखर्जी से मिल सके।

बैरिस्टर त्रिवेदी की याचिका पर निर्णय की तारीख 23 जून थी। सभी को यह आशा थी कि इस दिन डॉ. मुखर्जी मुक्त हो जायेंगे। किन्तु इसकी पूर्व रात्रि में रहस्यपूर्ण ढंग से उनकी मृत्यु हो गयी। उनके साथ गिरफ्तार अन्य सहयोगियों को रिहा कर दिया गया।

अस्थायी अनुच्छेद-370

17 अक्तूबर 1949 को काश्मीर मामलों को देख रहे मंत्री गोपालस्वामी अयंगार ने भारत की संविधान सभा में अनुच्छेद–306(ए) (वर्तमान अनुच्छेद–370) को प्रस्तुत किया। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की अध्यक्षता में गठित समिति द्वारा संविधान का जो मूल पाठ (ड्राफ्ट) प्रस्तुत किया गया था, उसमें यह अनुच्छेद–306(ए) सम्मिलित नहीं था। डॉ. अंबेडकर ने संविधान सभा में इस विषय पर एक भी शब्द नहीं बोला।

गोपालस्वामी अयंगार और मौलाना हसरत मोहानी के अतिरिक्त संविधान सभा में इस पर हुई बहस में किसी ने भी भाग नहीं लिया, यहां तक कि जम्मू–काश्मीर से चुने गये चारों सदस्य वहां उपस्थित होते हुए भी चुप रहे।

कांग्रेस कार्यसमिति में कुछ ही दिन पूर्व इस प्रस्ताव पर दो दिन तक चर्चा हुई थी जिसमें गोपालस्वामी अयंगार अकेले पड़ गये। केवल मौलाना अबुल कलाम आजाद उनके एकमात्र समर्थक थे। नेहरू जी के भारत में न होने के कारण सरदार पटेल को अयंगर के समर्थन में आना पड़ा और कांग्रेस दल ने नेहरू की इच्छा का सम्मान करते हुये कुछ संशोधनों के साथ इस अनुच्छेद को संविधान में शामिल करने का निर्णय लिया।

अनुच्छेद–370 – संविधान में 21वें अध्याय में यह अनुच्छेद अस्थायी, संक्रमणकालीन शीर्षक के अंतर्गत सम्मिलित किया गया। वस्तुतः इसे अतिरिक्त विधायी प्रक्रिया (एडीशनल लेजिस्लेटिव मैकेनिज्म) के रूप में जोड़ा गया था ताकि राज्य के अपने संविधान निर्माण तक प्रतीक्षा न करते हुए आवश्यक वैधानिक प्रावधानों को लागू किया जा सके। इसके अनुसार भारतीय संविधान की केन्द्रीय एवं समवर्ती सूची में से भारतीय संसद –

1. विदेश, संचार, सुरक्षा (आंतरिक सुरक्षा सहित) पर जम्मू–कश्मीर सरकार से सलाह कर कानून बना सकती है।

2. केन्द्रीय एवं समवर्ती सूची के शेष सब विषयों पर संसद द्वारा पारित कानून जम्मू–काश्मीर सरकार की सहमति से लागू किये जा सकेंगे।

अस्थायी अनुच्छेद 370 के दुष्परिणाम

भारतीय संविधान के अनुच्छेद–35(ए) के अंतर्गत राज्य की विधानसभा को राज्य के स्थायी निवासी की परिभाषा निर्धारित करने का अधिकार दिया गया। अपने इस अधिकार का प्रयोग करते हुए राज्य विधानसभा ने निश्चित किया कि राज्य के संविधान के लागू होने की तिथि (1954) से 10 वर्ष पूर्व से राज्य में रह रहे नागरिक ही राज्य के स्थायी निवासी माने जायेंगे।

विधान सभा ने यह भी निश्चित किया कि जम्मू–काश्मीर के जिन निवासियों (जो 1944 से पूर्व से यहां रहते थे) के पास स्थायी निवासी प्रमाण पत्र होगा, वे ही राज्य में नागरिकता के सभी मूल अधिकारों का उपयोग कर सकेंगे। इस कारण से शेष भारत के निवासी जम्मू–काश्मीर में न तो सरकारी नौकरी प्राप्त कर सकते हैं और न ही जमीन खरीद सकते हैं। उनको राज्य के अंतर्गत वोट देने का अधिकार भी नहीं है।

1947 में जम्मू–काश्मीर में पश्चिम पाकिस्तान से आये हिन्दू शरणार्थी (आज लगभग दो लाख) अभी भी नागरिकता के मूल अधिकारों से वंचित हैं, जबकि तत्कालीन प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला ने ही खाली पड़ी सीमाओं की रक्षा के लिए यहां उनको बसाया था। इनमें अधिकतर अनुसूचित और पिछड़ी जातियों के हैं। इनके बच्चों को न छात्रवृति मिलती है और न ही व्यावसायिक पाठयक्रमों में प्रवेश का अधिकार है। सरकारी नौकरी, संपत्ति क्रय–विक्रय तथा स्थानीय निकाय चुनाव में मतदान का भी अधिकार नहीं है।

शेष भारत से आकर यहां रहने वाले व कार्य करने वाले प्रशासनिक, पुलिस सेवा के अधिकारी भी इन नागरिकता के मूल अधिकारों से वंचित है। 30–35 वर्ष इस राज्य में सेवा करने के बावजूद भी इन्हें अपने बच्चों को उच्च शिक्षा हेतु राज्य से बाहर भेजना पड़ता है और सेवानिवृत्ति के बाद वे यहां एक मकान भी बनाकर नहीं रह सकते।

1956 में जम्मू–काश्मीर के तत्कालीन प्रधानमंत्री बख्शी गुलाम मुहम्मद ने जम्मू शहर में सफाई व्यवस्था में सहयोग करने के लिये अमृतसर (पंजाब) से 70 वाल्मीकि परिवारों को निमंत्रित किया। आज तक उन्हें राज्य के अन्य नागरिकों के समान अधिकार नहीं मिले। उनके बच्चे चाहे कितनी भी शिक्षा प्राप्त कर लें, जम्मू–काश्मीर के संविधान के अनुसार केवल सफाई कर्मचारी की नौकरी के लिये ही पात्र हैं। आज उनके लगभग 600 परिवार हैं लेकिन उनकी आवासीय कॉलोनी को भी अभी तक नियमित नहीं किया गया है।

मंडल आयोग की रिपोर्ट न लागू होने के कारण यहां पिछड़ी जातियों को आरक्षण नहीं है।

सन 2007 तक कश्मीर घाटी में अनुसूचित जातियों को अधिकांश नौकरियों में आरक्षण प्राप्त नहीं हुआ। सर्वोच्च न्यायालय के 2007 के निर्णय, जिसके अंतर्गत हरिजनों को कश्मीर घाटी में आरक्षण प्राप्त हुआ, को भी सरकार ने विधानसभा में कानून द्वारा बदलने का प्रयास किया, जो जनांदोलन के दबाव में वापिस लेना पड़ा।

संपत्ति कर, उपहार कर, शहरी संपत्ति हदबंदी विधेयक आदि कानून राज्य में लागू नहीं होते।

शासन के विकेन्द्रीकरण के 73 वें एवं 74 वें संविधान संशोधन को अभी तक लागू नहीं किया गया। गत 67 वर्षों में केवल 4 बार पंचायत के चुनाव हुए।

आज भी भारतीय संविधान की 134 धारायें यहां लागू नहीं हैं। यहां भारतीय दण्ड विधान के स्थान पर रणवीर पैनल कोड (आर.पी.सी.) लागू है।

अनुसूचित जनजाति के समाज को राजनैतिक आरक्षण अभी तक प्राप्त नहीं है।

राज्य में फॉरेस्ट एक्ट लागू न होने के कारण वन भूमि पर रहने वाले ग्रामीणों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

भारत का जनप्रतिनिधित्व कानून पूर्ण रूप से लागू न होने के कारण जम्मू व लद्दाख को विधानसभा व लोकसभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। जम्मू का क्षेत्रफल व वोट अधिक होने के बाद भी लोकसभा व राज्य विधानसभा में प्रतिनिधित्व कम है। लेह जिले में दो विधानसभाओं का कुल क्षेत्रफल 46000 वर्ग किमी. है।

सारे देश में लोकसभा क्षेत्रों का 2002 के पश्चात पुनर्गठन हुआ, परन्तु जम्मू–काश्मीर में नहीं हुआ।

यहां विधानसभा का कार्यकाल 6 वर्ष है जबकि पूरे देश में यह 5 वर्ष है।

भारत के राष्ट्रपति में निहित अनेक आपातकालीन अधिकार यहां लागू नहीं होते।

अनुच्छेद–370 संविधान में क्यों जोड़ा गया

संविधान सभा में प्रस्ताव आने पर संयुक्त प्रांत (वर्तमान उत्तर प्रदेश) संविधान सभा के प्रतिनिधि मौलाना हसरत मोहानी ने प्रश्न पूछा– यह भेदभाव क्यों?

गोपालस्वामी अयंगार ने उतर दिया –कश्मीर की कुछ विशिष्ट स्थिति है, इसलिये अंतरिम रूप से कुछ विशेष व्यवस्थाओं की आज आवश्यकता है। उन्होंने स्पष्ट किया–

1. जम्मू–काश्मीर राज्य के अंतर्गत कुछ युध्द चल रहा है। युद्ध विराम लागू है, पर अभी सामान्य स्थिति नहीं है।

2. राज्य का कुछ हिस्सा आक्रमणकारियों के कब्जे में है।

3. संयुक्त राष्ट्र संघ में हम अभी उलझे हुये हैं, वहां कश्मीर समस्या का समाधान बाकी है।

4. भारत सरकार ने जम्मू–काश्मीर के लोगों को वादा किया है कि सामान्य स्थिति होने के पश्चात जनता की इच्छाओं के अनुसार अंतिम निर्णय किया जायेगा।

5. प्रजासभा का अब अस्तित्व नहीं है। हमने स्वीकार किया है कि राज्य की अलग से संविधान सभा द्वारा केन्द्रीय संविधान का दायरा एवं राज्य के संविधान का निर्णय किया जायेगा।

6. इन विशेष परिस्थितियों के कारण अस्थायी तौर पर इस अनुच्छेद–370 को संविधान में शामिल करने की आवश्यकता है।

वास्तव में यह आंतरिक आवश्यकता एवं तदनुरूप व्यवस्था थी। जब स्थितियां सामान्य हो गईं, संविधान सभा ने विलय प्रपत्र का अनुमोदन कर दिया, बार–बार राज्यों के चुनाव के उपरांत भारत के संविधान के अंतर्गत राज्य सरकारें काम करती रहीं, तो इस व्यवस्था को समाप्त होना ही चाहिए था। जम्मू–काश्मीर के संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट कहा गया है–

हम जम्मू–काश्मीर के लोगों ने एकमत से स्वीकार किया है, ... 26 अक्तूबर 1947 के जम्मू–काश्मीर के भारत में विलय के उपरांत पुनर्परिभाषित करते हैं कि जम्मू–काश्मीर भारत का अभिन्न अंग है,... हम भारत की एकता–अखंडता के प्रति प्रतिबद्ध हैं।

महाराजा हरिसिंह ने उसी विलय प्रपत्र पर हस्ताक्षर किये, जिस पर शेष 562 रियासतों ने हस्ताक्षर किये थे। इस प्रपत्र का मसौदा उस समय के गृह मंत्रालय द्वारा तैयार किया गया था, जिसे लेकर स्वयं गृह सचिव वी.पी. मेनन महाराजा हरिसिंह के पास आये थे। यह दुष्प्रचार है कि महाराजा हरिसिंह बाकी राजाओं

की तरह रियासत को भारत के साथ एकात्म नहीं करना चाहते थे।

महाराजा हरिसिंह ने 15 जुलाई 1948 को सरदार पटेल को पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कहा स्वाभाविक ही हम पूरे भारत की प्रगति में इच्छुक हैं। इस विषय पर मेरे विचार से सभी अवगत हैं और अनेक अवसरों पर मैंने इसे व्यक्त भी किया है। संक्षेप में भारत के नये संवैधनिक ढांचे में हम अपना समुचित स्थान चाहते हैं, हमारी आशा है कि विश्व में एक महान राष्ट्र के रूप में भारत स्थापित होगा और अपने प्रभाव एवं विश्व बंधुत्व, श्रेष्ठ संस्कृति की अवधारणा के द्वारा मानव जाति की समस्याओं के समाधान में अपना योगदान देगा।

वास्तव में यह विशिष्ट स्थिति 1954 के संविधान सभा के प्रस्ताव के पश्चात समाप्त हो गई थी और अब तो संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अपने विवादित विषयों की सूची में से जम्मू–काश्मीर को बाहर कर दिया है। इसके पश्चात भी सत्ता की लालची, अलगाववादी, विभेदकारी शक्तियों के सामने झुककर अलगाव के प्रतीक अलग संविधान, अलग झंडा, एवं अनुच्छेद–370 को जारी रखने की आवश्यकता ही नहीं है।

लाल और सफेद (दो रंगो का) अलग झंडा तो 1952 में स्वीकार किया गया। वास्तव में हर विषय में शेख अब्दुल्ला नेशनल कांफ्रेंस को कांग्रेस के समानान्तर रखते थे तथा काश्मीर को भारत के समकक्ष अलग राष्ट्र मानते थे। इसीलिए नेशनल कांफ्रेंस के झंडे की तरह ही जम्मू–काश्मीर का राज्य ध्वज, राज्य के लिये अलग संविधान और यहां तक कि सदरे रियासत और वजीरे आजम (राज्य–अध्यक्ष एवं प्रधानमंत्री) की व्यवस्था लागू की गई। इसमें से अंतिम बात तो समाप्त हो गई परन्तु दो निशान एवं दो संविधान अभी भी हैं, जिसके कारण से अलग पहचान को बढ़ावा मिलता है।

अनुच्छेद–370 के कारण जम्मू–काश्मीर की पूरे भारत के साथ सहज एकात्मता समाप्त हो गई। काश्मीर घाटी को तो ऐसा स्थान बना दिया गया है जहां देश का कोई भी व्यक्ति अपने आप को बाहरी अनुभव करता है।

अंतर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप

काश्मीर में चल रहा आतंक का खेल जिस मुकाम पर पहुंच चुका है वहां काश्मीरी अलगाववादी केवल मुहरे भर रह गये हैं। चालें कहीं और से चली जा रही हैं, दांव कोई और लगा रहा है। पाकिस्तान जहां काश्मीर को लेकर लगातार विवाद को बनाये हुए है वहीं चीन ने भी लद्दाख पर अपना दावा जताने के लिये नत्थी वीजा देने का क्रम बंद नहीं किया है।

सामरिक महत्व के कारण जम्मू–काश्मीर का एक बड़ा भू–भाग हड़पने के बाद भी चीन लगातार भारत की सीमा पर अपनी गतिविधियां बढ़ा रहा है। अमेरिका भी काश्मीर पर प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से जहां इनकार करता रहा है वहीं पाकिस्तान के माध्यम से अलगाववादी गतिविधियों को मौन समर्थन दे रहा है।

अमेरिका जम्मू–काश्मीर को विवादित बनाये रखना चाहता है अथवा उसे भारत और पाकिस्तान के बीच एक बफर स्टेट के रूप में देखने का इच्छुक है। कूटनीतिक रूप से यही उसके अनुकूल है। जम्मू–काश्मीर में अगर उसे घुसने का मौका मिलता है तो वह चीन सहित मध्य एथिया और भारत सहित दक्षेस के देशों पर निगरानी बनाये रख सकता है।

यही कारण है कि बार–बार आतंकवादी घटनाओं में पाकिस्तान की कुख्यात गुप्तचर एजेंसी आईएसआई का हाथ साबित होने के बाद भी अमेरिका न तो पाकिस्तान से संबंध तोड़ने को तैयार है और न ही उसे दी जाने वाली आर्थिक सहायता ही रोक रहा है।

वर्तमान में अमेरिका, अपने हित एवं अस्थिर जम्मू–काश्मीर के माध्यम से मध्य एशिया में अपनी स्थायी उपस्थिति को पूर्ण करने के लिये इस आंदोलन का छद्म रूप से अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर समर्थन कर रहा है। 1950 के कालखंड में अमेरिका ने ही शेख अब्दुल्ला की स्वतंत्र काश्मीर की आकांक्षा जगाई थी। वह जम्मू–काश्मीर में अपनी स्थायी सैन्य उपस्थिति के द्वारा मध्य एशिया में प्रभाव कायम रखना चाहता था।

दूसरी ओर चीन भी गिलगित–बल्तिस्तान में अपने सामरिक हितों को ध्यान में

रखते हुए जम्मू–काश्मीर के विवाद को जीवित रखना चाहता है। इसलिये लद्दाख में सेना द्वारा सीमा अतिक्रमण, भारतीय वीजा के स्थान पर जम्मू–काश्मीर के लिये अलग अनुमति पत्र, अपने नक्शे में जम्मू–काश्मीर को भारत का हिस्सा न दिखाना आदि अवांछित हरकतों के द्वारा जम्मू–काश्मीर विवाद को हवा देता रहता है।

वास्तविकता यह है कि अलगाववाद का सारा ताना–बाना जम्मू–कश्मीर की केवल काश्मीर घाटी (14 प्रतिशत क्षेत्रफल) के दस में से केवल 5 जिलों– बारामुला, श्रीनगर, पुलवामा, अनंतनाग और शोपियां नगर तक ही सीमित है।

गुज्जर, शिया, पहाड़ी, राष्ट्रवादी मुसलमान, कश्मीरी सिख व पंडित, लद्दाख, शरणार्थी समूह, डोगरे, बौद्ध कोई भी भारत से अलग होने की बात नहीं करता किन्तु वातावरण ऐसा बना दिया जाता है जैसे पूरा जम्मू–काश्मीर भारत से अलग होने पर आमादा है और आजादी के नारे लगा रहा है। उमर अब्दुल्ला द्वारा बार–बार जम्मू–काश्मीर के भारत में पूर्ण विलय को नकारना, जम्मू–काश्मीर को विवादित मानना उनकी अलगाव–समर्थक भूमिका को ही दर्शाता है। गत वर्षों में सरकार द्वारा सशस्त्र बल विशेषाधिकार अधिनियम को हटाने, जेल में बंद आतंकियों एवं अलगाववादियों की एकमुश्त रिहाई के असफल प्रयास कई बार हो चुके हैं।

पाकिस्तान का अपूर्ण लक्ष्य

जम्मू–काश्मीर को प्राप्त करना पाकिस्तान का अपूर्ण लक्ष्य है और वह इसे किसी भी कीमत पर पूरा करना चाहता है। चार युद्ध लड़ने और हारने के बाद भी उसकी युद्धपिपासा शांत नहीं हुई है। पाकिस्तान का जन्म एक विशिष्ट मानसिकता में से हुआ है। इसलिये सीमा पर तनाव और युद्ध के बादल तब तक नहीं छंटेंगे जब तक कि इस मानसिकता को ही न बदल दिया जाय। निम्न घटनाक्रम पर दृष्टि डालने से इस बात की पुष्टि हो सकती है –

• देश विभाजन से ही पाकिस्तान (अंग्रेजों के सहयोग से) जम्मू–काश्मीर को पाकिस्तान में मिलाना चाहता था।

• मोहम्मद अली जिन्ना महाराजा को विलय के लिए मनाने में असफल रहे तो सितंबर, 1947 से ही आर्थिक एवं संचार नाकाबंदी कर दी। उस समय जम्मू–काश्मीर का सड़क एवं रेल मार्ग, आपूर्ति, संचार संपर्क का मार्ग लाहौर, रावलपिंडी, सियालकोट व पेशावर से ही था।

• अक्तूबर के प्रारंभ से ही घुसपैठ, लूटमार प्रारंभ हो गई व 22 अक्तूबर को कबायलियों की आड़ में पाकिस्तान ने सीधा आक्रमण ही कर दिया।

• पाकिस्तान ने 1965 एवं 1971 में सीधे युध्द के द्वारा जम्मू–काश्मीर छीनने की कोशिश की।

• 1975 के पश्चात आपरेशन टोपाक के अंतर्गत आतंकवाद का प्रशिक्षण, घुसपैठ, द्वारा भारत के विरुद्ध अघोषित युध्द प्रारंभ किया गया। बीस वर्ष के कालखंड में लगभग 1 लाख लोग (5000 सुरक्षाबलों सहित) मारे गये व हजारों स्थायी रूप से विकलांग हो गये।

• करगिल युद्ध में 1999 में पाकिस्तान ने लद्दाख को शेष भारत से काटने की कोशिश की। युद्ध में 474 अधिकारी व अन्य रैंक के सैनिक बलिदान हुए और 1109 घायल हुए।

• 30 जुलाई 1999 को पाकिस्तानी समाचार पत्र फ्राइडे टाइम्स ने अपने

संपादकीय में लिखा – करगिल अभियान की योजना योग्य सैन्य अधिकारियों द्वारा कई वर्षों से बनायी जा रही थी। पाकिस्तानी प्रवक्ताओं ने कहा कि यदि कश्मीर मुद्दे के ऐसे समाधान के लिये भारत तैयार नहीं होता है जो पाकिस्तान को भी स्वीकार हो तो भविष्य में इस तरह के कई करगिल होंगे।

• पाकिस्तान की राष्ट्रीय असेम्बली में 12 जुलाई 1999 को प्रधानमंत्री नवाज शरीफ ने कहा, हालांकि करगिल का ज्वालामुखी विस्फोट अब नियंत्रण में है लेकिन यदि भारत ने कश्मीर मामले पर सार्थक बात–चीत नहीं की तो कई अन्य ज्वालामुखी फटेंगे।

उपसंहार

1947 में जम्मू–काश्मीर के तत्कालीन महाराजा हरि सिंह ने अपने राज्य का भारत में विधिवत विलय किया था। भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के अंतर्गत यह एक वैधानिक प्रावधान था जिसका पालन महाराजा ने किया तथा तत्कालीन गवर्नर जनरल माउंटबेटन ने इसे स्वीकार किया। यह निर्णय करने के एकमात्र अधिकारी यद्यपि महाराजा स्वयं थे किन्तु इसमें उनके धुर विरोधी तथा बाद में वहां के प्रधानमंत्री रहे शेख अब्दुल्ला की सहमति भी शामिल थी।

जम्मू–काश्मीर के मामले में भारतीय नेतृत्व निरंतर गलतियां करता रहा है। इसकी कीमत न केवल राज्य की जनता ने चुकायी बल्कि देश भी चुका रहा है। पाकिस्तान द्वारा इस राज्य के एक हिस्से पर कब्जा करने के बाद से आज तक केवल प्राकृतिक संसाधनों की लूट ही उसका उद्देश्य रहा है। इस क्षेत्र में से लगभग छः हजार किलोमीटर जमीन 1963 में उसने चीन को भेंट कर दी। अब गिलगित को भी पट्टे पर देने की बात चल रही है। चीन इस रास्ते से ग्वादर बंदरगाह तक पहुंच चुका है और भारत के लिये सामरिक और रणनीतिक चुनौती पेश कर रहा है।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा पाकिस्तान को बहुत पहले ही पाक अधिक्रांत क्षेत्र को खाली करने को कहा जा चुका है। भारत की संप्रभुता को चुनौती देते हुए चीन को वहां आमंत्रित करना निंदनीय और आपत्तिजनक है। पाक की दृष्टि वहां पर मौजूद सोने, तांबे और यूरेनियम के अथाह भंडार पर है। तकनीकी और आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण वह इस लूट में साझा करने के लिये चीन को आमंत्रित कर रहा है।

चीन इस मामले में उसका गुरू भी है। पाक इस क्षेत्र में वही सब हथकंडे दोहरा रहा है जो चीन दशकों से तिब्बत, पूर्वी तुर्किस्तान और इनर मंगोलिया में अपना रहा है। जिस तरह चीन तिब्बत में चीनी जनसंख्या को बसा कर मूल तिब्बतियों को जातीय तौर पर अल्पसंख्यक बना रहा है और जनसांख्यिक बदलाव के द्वारा वहां अपने विरोध को प्रभावहीन बना रहा है, वही कार्य पाकिस्तान

गिलगित–बल्तिस्तान में पंजाबीभाषी एवं पख्तून सुन्नी मुस्लिम जनसंख्या को बसा कर और वहां के व्यापार और नौकरियों में उनकी संख्या बढ़ा कर करना चाहता है।

पाकिस्तान की कुख्यात खुफिया एजेन्सी इस इलाके में आतंकवादियों के प्रशिक्षण कैंप चलाती है वहीं वह स्थानीय निवासियों को उनके कबीलाई रीति–रिवाजों और परम्पराओं से दूर कर उनके अरबीकरण में जुटी है। इसके लिये वह आतंकवादी गुटों का भी सहारा लेती है। इसका विरोध करने वाले स्थानीय नेताओं को राजद्रोह के आरोप में जेलों में ठूंस दिया जाता है और उनका उत्पीड़न किया जाता है।

पाकिस्तान का सर्वोच्च न्यायालय अपने ऐतिहासिक निर्णय में 1994 में यह स्पष्ट कर चुका है कि गिलगित–बल्तिस्तान जम्मू–काश्मीर का हिस्सा है और पाकिस्तान के संविधान के अनुसार जम्मू–काश्मीर पाकिस्तान का हिस्सा नहीं है। इसके बावजूद भारत ने इस मुद्दे पर कठोरता से बात करने की जहमत नहीं उठाई। इससे पूर्व 29 अगस्त 2009 में पाकिस्तान ने गिलगित–बल्तिस्तान में विधानसभा का गठन कराया तो भी भारत ने विरोध की चिट्ठी लिख कर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली।

जिस इलाके को वहां का सर्वोच्च न्यायालय ही देश का भाग स्वीकार नहीं करता और जो वैधानिक रूप से भारत का अभिन्न अंग है, उसमें पाकिस्तान द्वारा विधानसभा के गठन को जिस तीव्रता के साथ चुनौती दी जानी चाहिये थी उसके लिये इच्छाशक्ति के अभाव के साथ ही घोर लापरवाही का परिचय भारत की ओर से दिया गया। इसने पाकिस्तान का उत्साह ही बढ़ाया। उसने एक कदम आगे बढ़ कर उसे पूरे तौर पर निगल जाने की भूमिका बनानी शुरू कर दी है। इसके पहले चरण के रूप में वहां की कथित विधानसभा ने एक प्रस्ताव पारित कर पाकिस्तान सरकार से प्रार्थना की कि वह उसे अधिकृत रूप से अपने एक राज्य की मान्यता प्रदान करे। विधानसभा द्वारा पारित प्रस्ताव गिलगित–बल्तिस्तान कौंसिल को भेजा गया है। इस कौंसिल के चेयरमैन स्वयं पाकिस्तान के प्रधानमंत्री हैं। यह उल्लेखनीय है कि पाकिस्तान की दबंगई के बावजूद भी यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित नहीं हो सका। स्थानीय नागरिक भी इसके खिलाफ आवाज उठाने लगे हैं। लेकिन जिस भारत से उन्हें सबसे मजबूत समर्थन की उम्मीद है उसने ही खामोशी ओढ़ी हुई है।

जम्मू–काश्मीर का मसला ऐसी फांस बन चुका है जिसे निकाले बिना सीमा पर

शांति संभव नहीं। इसे निकालने में जितनी देर की जायेगी, पीड़ा उतनी ही अधिक बढ़ेगी। दुर्भाग्य यह है कि देश का नेतृत्व गत छः दशकों से इसे हल करने के बजाय टालने की नीति पर चल रहा है। इसके कारण भ्रम उत्पन्न हो रहे हैं, वैमनस्य बढ़ रहा है और विकास बाधित हो रहा है।

कोई भी देश, जो चारों तरफ से अपने शत्रुओं से घिरा हो, चार युद्ध लड़ चुका हो और हर समय संभावित युद्ध से आशंकित हो, दशकों से निरंतर छायायुद्ध झेल रहा हो, जिसकी सीमा के भीतर करोड़ों विदेशी घुसपैठिये हों जिनमें से अधिकांश शत्रुराष्ट्र के एजेंट की तरह काम कर रहे हों, के लिये दो अंकों की विकास दर, आर्थिक महाशक्ति बनने की ओर प्रस्थान, विदेशी निवेश का स्वर्ग जैसे आर्थिक मुहावरे मरीचिका ही बने रहेंगे जब तक कि सीमा पर शांति तथा नागरिकों और निवेशकों के मन में भरोसा न स्थापित हो जाय। जम्मू–काश्मीर के प्रश्न का समाधान न केवल भारत अपितु समूचे दक्षिण एशिया के विकास की जरूरी शर्त है।

जम्मू–काश्मीर की जब बात की जाती है तो नियंत्रण रेखा के दोनों ओर के जम्मू–काश्मीर का विचार करते हुए बात की जानी चाहिये। भारत, जो इस बात पर गर्व करता है कि वह दुनियां का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, नियंत्रण रेखा के पार अपने ही नागरिकों पर होते अत्याचार और नस्लीय हमलों के प्रति आंख मूंद कर कब तक रह सकता है। क्या देश उस नैतिक जिम्मेदारी से हट सकता है जो राज्य के लोगों ने पाकिस्तान के आक्रमण के बावजूद भारत में विलय का समर्थन करके हमारे ऊपर डाली थी। यह तथ्य है कि यदि कहीं कोई विरोध था भी तो वह राजशाही के खिलाफ था न कि भारत में विलय के खिलाफ। उस समय राज्य के मुस्लिमों का प्रतिनिधित्व करने वाले शेख अब्दुल्ला भारत में विलय के समर्थन में थे। कबायलियों के भेष में श्रीनगर की ओर बढ़ रही पाकिस्तानी सेना को रोकने के लिये तुरंत भारतीय सेना भेजी जाय, इसके लिये वे स्वयं श्री नेहरू के पास अनुरोध करने आये थे। महाराजा तो स्वयं ही भारत में विलय के प्रपत्र पर हस्ताक्षर कर चुके थे। फिर कौन था जो भारत में विलय के खिलाफ था और उसकी क्या अधिस्थिति थी। ऐसी भी कोई जानकारी नहीं मिलती कि जिस इलाके पर पाकिस्तान ने कब्जा कर लिया वहां के निवासियों की बेहतरी के लिये उसने कुछ खास इंतजाम कर दिये हों। इन इलाकों के प्राकृतिक संसाधनों की बेतहाशा लूट के तो सबूत मिलते हैं लेकिन वहां आम आदमी की जिंदगी में आने वाली रोशनी की चर्चा सुनाई नहीं पड़ती। अब तो शायद इस्लामाबाद में भी ऐसे लोगों की बड़ी जनसंख्या हो जो पहला अवसर मिलते ही देश छोड़ कर जाने के

लिये उतावले हों।

ऐसी स्थिति में भी भारत में ही एक तबका है जो मीरपुर, मुजफ्फराबाद, गिलगित और बल्तिस्तान ही नहीं, जम्मू–काश्मीर और लद्दाख को भी भारत से अलग करने की वकालत करता है। अगर मीरवायज, गिलानी, यासीन मलिक और शब्बीर शाह को पाकिस्तान में बेहतर जिंदगी की उम्मीद होती तो वे कबके वहां जाकर अपना आशियाना बना चुके होते। लेकिन उन्हें यह पता है कि यहां रहते हुए यहां के शासन की आलोचना करना, रोज–रोज आंदोलन और बंद करके नागरिकों का जीना दूभर कर देना और फिर भी सारी दुनियां में घूम–घूम कर अपनी ही सरकार की आलोचना करने की आजादी सिर्फ भारत में ही मिल सकती है, पाकिस्तान में नहीं। प्रश्न यह भी है कि इन मुट्ठी भर अलगाववादियों के पीछे किसका समर्थन है। क्या उनकी हौंसलाअफजाई करने वाले भूषणों और अरुंधतियों के आर्थिक स्त्रोतों की जांच कराना असंभव है।

मीरपुर, मुजफ्फराबाद, भिम्बर, कोटली, किशनगंगा घाटी, शारदा घाटी, गिलगित, बाल्तिस्तान, हुंजा–नगर, खापलू और स्कर्दू, दायमर और घेजर, गौरीकोट और आलियाबाद सहित अनेक नगरों–गांवों के नागरिक भारत के वैधानिक नागरिक हैं और उनके मानवाधिकारों की रक्षा और भारत के संविधान के अनुसार उनके मूल अधिकार सुनिश्चित करना भारत सरकार की जिम्मेदारी है। अल्पसंख्यक समुदाय के 60 लाख से ज्यादा भारतीय नागरिक नियंत्रण रेखा के उस पार अंधेरे में जीने को अभिशप्त हैं। मुस्लिम मतों की राजनीति और ठेकेदारी करने वाले भी उनकी बेहाली की ओर से आंखें मूंद लेते हैं।

हालात उनके भी उतने ही बदतर हैं जो 1947 में अपनी जान बचा कर भारत में प्रवेश करने में सफल रहे। पाक अधिक्रांत क्षेत्र से विस्थापित होकर भारत में शरण लेने वाले लोगों की जनसंख्या आज 10 लाख से ज्यादा हो चुकी है। स्वतंत्र भारत की सरकार आज तक उनके पुनर्वास की कोई योजना बनाना तो दूर, उनका पंजीकरण भी नहीं कर सकी है। इन 65 वर्षों में उनकी तीन पीढ़ियां बीत चुकी हैं और चौथी पीढ़ी बुढ़ापे की ओर बढ़ रही है।

चीन द्वारा तिब्बत पर कब्जा करने के बाद 1959 में दलाई लामा और उनके सहयोगियों को तिब्बत से भागना पड़ा। भारत ने उनको शरण दी। हिमाचल प्रदेश में धर्मशाला नामक स्थान पर उनका निवास है। वहीं से सेन्ट्रल तिबेतन एडमिनिस्ट्रेशन का संचालन होता है। वहीं पर निर्वासित तिब्बत सरकार का मुख्यालय है। लगभग 1 लाख निर्वासित तिब्बती मिलकर अपने प्रतिनिधि चुनते

हैं जो सरकार बनाते हैं।

भारत के अंदर जब तिब्बत की निर्वासित सरकार चुनी जा सकती है तो पाक अधिक्रांत क्षेत्र के लोगों को जम्मू–काश्मीर विधान सभा और भारत की लोकसभा में प्रतिनिधित्व क्यों नहीं दिया जा सकता। यदि पाक ने उस क्षेत्र पर अवैध कब्जा नहीं किया होता तो भी तो वे अपने प्रतिनिधियों को चुनकर श्रीनगर अथवा दिल्ली ही भेजते। पाक के अवैध कब्जे को आधार बना कर भारत में रह रहे वहां के नागरिकों को उनके लोकतांत्रिक अधिकार से वंचित रखना लोकतांत्रिक अवधारणा के विरुद्ध है।

इन सारे प्रश्नों को हल करने और नियंत्रण रेखा के दोनों ओर बसे उन भारतीय नागरिकों के, जिनका भविष्य विलय के पश्चात भारत के शेष नागरिकों के साथ जुड़ गया है, के मानवाधिकारों की बहाली तथा विकास की यात्रा में देश के शेष नागरिकों के साथ कदम मिला कर चलने का अवसर उपलब्ध करना एक लोकतंत्र के रूप में भारत की जिम्मेदारी है। इससे जितनी देर तक नजरें चुराने की कोशिश होगी, जटिलता बढेगी।

यह विडंबना ही है कि जम्मू–काश्मीर से जुड़े प्रत्येक पहलू पर आजादी के बाद से ही आवरण डालने की कोशिश की गयी है। परिणामस्वरूप हर कोई वहां की स्थितियों की मनमानी व्याख्या कर रहा है और सच जानने वालों की आपराधिक चुप्पी इसके तिलिस्म को और गहरा कर रही है।

जम्मू–काश्मीर का मामला भारत का आन्तरिक मामला है। भारत सरकार यद्यपि यह कहती रही है और शिमला समझौते के बाद इसे सैद्धांतिक और वैधानिक स्थिति भी प्राप्त है, किन्तु आचरण के स्तर पर सरकार द्वारा मामले को हल करने तथा राज्य के नागरिकों को देश के शेष नागरिकों के समान अधिकार सुनिश्चित करने के स्थान पर अलगाववादी तथा पाकिस्तान प्रेरित तत्वों के तुष्टीकरण के ही प्रयास अधिक दिखायी देते हैं। परिणामस्वरूप, जिन लोगों ने भारत के साथ असंदिग्ध निष्ठा प्रदर्शित की है वे ही पीड़ा भुगतने के लिये अभिशप्त हैं।

निस्संदेह कहा जा सकता है कि चाहे वे पश्चिम पाक के शरणार्थी हों, पाक अधिक्रांत जम्मू–काश्मीर के विस्थापित हों, जम्मू के आतंक पीड़ित हों, विस्थापित काश्मीरी हिन्दू हों अथवा छम्ब के विस्थापित हों, केवल इसलिये इस दुरावस्था में हैं क्योंकि उन्होंने अलगाववादियों के साथ हाथ नहीं मिलाया, पाकिस्तानी हाथों की कठपुतली नहीं बने। लेकिन तीन पीढ़ियां बीतने के बाद भी अनिश्चित भविष्य से आशंकित वर्तमान पीढ़ी केवल हताश ही नहीं, अपितु व्यग्र भी है।

सरकार के लिये यह उचित समय है जब जम्मू–काश्मीर का मामला पूरी तौर पर सुलझा लिया जाय। इसके लिये पाकिस्तान या दुनियां के किसी भी देश की सहमति अथवा मध्यस्थता की नहीं बल्कि दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है। यदि केन्द्र सरकार यह दृढ़ता और साहस दिखाती है तो पूरे देश का विश्वास उसे प्राप्त होगा, इसमें जरा भी संदेह नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक में अत्यंत संक्षेप में तथ्यों को उदघाटित करने का प्रयास किया गया है। पाठक को जम्मू–काश्मीर के सत्य का साक्षात्कार कराने में यह पुस्तक यदि किंचित भी सफल रहती है तो लेखक का प्रयास सार्थक होगा।

जम्मू और कश्मीर राज्य के सम्बन्ध में 22 फरवरी 1994 को संसद में स्वीकृत सर्वसम्मत संकल्प

अध्यक्ष महोदय, संकल्प है

यह सभा

भारत में अशांति, वैमनस्य और विध्वंस पैदा करने के स्पष्ट उद्देश्य से पाकिस्तान तथा पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में स्थित शिविरों में आतंकवादियों को प्रशिक्षण देने, हथियार और धन उपलब्ध कराने, जम्मू और कश्मीर में भाड़े के विदेशी सैनिक सहित प्रशिक्षित जंगजुओ की घुसपैठ में सहायता देने में पाकिस्तान की भूमिका पर गहरी चिंता व्यक्त करती है। इस बात को दोहराती है कि प्रशिक्षित जंगजू लोगों की हत्या, लूटपाट तथा अन्य घृणित अपराध कर रहे हैं, लोगों को बंधक बना रहे हैं तथा आतंक का वातावरण पैदा कर रहे हैं, पाकिस्तान द्वारा भारत के राज्य जम्मू और कश्मीर में विध्वंस और आतंकवादी गतिविधियों के निरंतर समर्थन और प्रोत्साहन की कड़ी निंदा करती है।

पाकिस्तान से आतंकवाद को अपना समर्थन देना तत्काल बंद करने की मांग करती है क्योंकि यह शिमला समझौते तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत अंतर्राज्यीय आचरण के प्रतिमानों का उल्लंघन है और दोनों देशों के बीच तनाव की मूल जड़ है।

इस बात को दोहराती है कि भारतीय राजनीतिक और लोकतांन्त्रिक व्यवस्था तथा संविधान समस्त नागरिकों के मानवाधिकार के संवर्धन एवं संरक्षण की पक्की गारंटी देते है, पाकिस्तान के भारत–विरोधी मिथ्या और झूठे प्रचार को अस्वीकार्य एवं निंदनीय मानती है, पाकिस्तान से उद्भूत होने वाले अत्यंत भड़काने वाले बयानों पर गहरी चिंता व्यक्त करती है और पाकिस्तान से अनुरोध करती है कि वह ऐसे बयानों से बाज आये जिनसे वातावरण दूषित होता हो और जनता उत्तेजित हो।

भारत के राज्य जम्मू और कश्मीर के पाकिस्तान के अवैध कब्जे के अधीन की जनता की दयनीय परिस्थितियों, मानवाधिकार हनन और उनके लोकतांत्रिक अधिकारों से उन्हें वंचित रखने पर खेद और चिंता व्यक्त करती है। यह सभा भारत की जनता की ओर से यह दृढ़ घोषणा करती है –

(क) जम्मू और कश्मीर राज्य भारत का अविभाज्य अंग रहा है और रहेगा तथा उसे शेष भारत से पृथक करने के किसी भी प्रयास का सभी आवश्यक साधनों से विरोध किया जाएगा।

(ख) भारत की एकता, प्रभुसत्ता और क्षेत्रीय अखंडता के विरुद्ध हर तरह के षड्यंत्रों का प्रतिरोध करने की इच्छा शक्ति और क्षमता भारत में है और यह मांग करती है कि –

(ग) पाकिस्तान को भारत के राज्य जम्मू और कश्मीर के सभी क्षेत्र खाली कर देने चाहिए जिन्हें आक्रमण कर हथिया लिया है और यह संकल्प करती है कि–

(घ) भारत के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के किसी भी प्रयास का डट कर मुकाबला किया जाएगा।

संकल्प एकमत से स्वीकृत हुआ।

अध्यक्ष महोदय, संकल्प एकमत से पारित किया जाता है।

जम्मू–कश्मीर अध्ययन केन्द्र

प्रवासी भवन, 50, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नयी दिल्ली–110002
दूरभाष : + 91-11-2321 3039